सर्वोपनिषत्सारभूतम्

श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्रम्

सटिप्पणम्

स्वामीतपोवनम्

तत्सत्
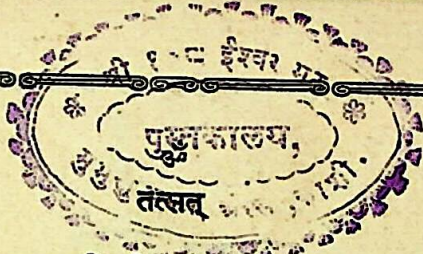
पूज्यपाद श्रीतपोवनस्वामिविरचितम्

सर्वोपनिषत्सारभूतम्

श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्रम्

तत्कृतटिप्पणीसमलंकृतम्

द्विवेदीत्युपाह्व विश्वनाथात्मजेन

पंडितश्री वल्लभरामशर्मणा प्रकाशितम्

मूल्यं १० आणकाः

मुद्रकः—
प्रभाशंकर जयशंकर पाठक.
धी जगदीश्वर प्रिंटिंग प्रेस,
गिरगांव गायवाडी, घर नं. ९,
मुंबई–४.

आवृत्ति १.] सन १९३०. [प्रति १०००.

भूमिका।

यह अष्टादशस्तवकात्मक " श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र " सर्वोपनिषद्रूपकल्पतरु के पुष्पोमेंसे साभिनिवेश आकर्षित किया हुआ " मधु " है. अनेक प्रकारके राग और द्वेषादिसे भरपूर यह संसारमें परमेश्वर की भक्ति और ज्ञानाख्य " मधु " आस्वादनसे परं और कोई वास्तविक पुरुषार्थ नहीं है.

यह स्तोत्र राज ऐसा है कि, पढने मात्रसे अवर्णनीय भक्तिरसका हृदयमें संचार हो जाता है. यद्यपि आजकल स्तोत्र तो बहुत उपलब्ध होते हैं, तथापि, इसमें तो अनेक प्रकार की अपूर्वताएं भरी है; जिसमें से मुख्य तीन का तो मैं उल्लेख करता हूं.

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं ।
न शोभतेज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥

अर्थात्, कैसाभी नैष्कर्म्यरूप, परिपूर्ण निरञ्जन, ज्ञान होवे तथापि उसी ज्ञान यदि परमेश्वर भक्ति रहित होवे; तो वह अच्छा नहीं लगता; केवल शुष्क लगता है. इसी बातकुं ध्यानमें रखकर, यह स्तोत्रमें अनेक प्रकारके उत्तम छंदोंमें, ईशादि बृहदारण्यकांत दश, और श्वेताश्वतर आदि छ, ऐसा मिल-कर षोडश उपनिषत् के अर्थोंका अति सरलता और भक्तिरसपूर्वक श्री उत्तरकाशीविश्वनाथमें समन्वय किया है. अतएव सभक्तिक ज्ञानका प्रतिपादन, यह प्रथम अपूर्वता है.

श्री उत्तरकाशीक्षेत्र बडा पुण्यस्थान है. अहो ! जिसने पृथ्वीभरका पर्वतराज हिमगिरिमध्यस्थ इस क्षेत्रका दर्शन श्रवणादिक किया नहीं उसकु भाग्यहीन माननेमें कोई दोष नहीं.

जहांके वृक्ष अपनेको स्थावर योनि मिलने परभी स्वजन्म साफल्य मानते हुवे, संसार संतप्त पुरुषों की तरफ देखकर; अपने खीले हुवे पुष्पोंसे मानों हांसी करते हुवे मालुम पडते हैं.

जहां पतित पावनी भागीरथी अपनी चंचल लहरियों-द्वारा निरंतर ताण्डव करती हुई क्लेशादि परिपीडित मनु-

ष्योंका दर्शन मात्रसेही सर्व प्रकारका दुःख निवृत्त कर देती है. और श्री रचयिता इस स्तोत्रके अंतिम स्तबकमें लिखते हैं कि,

पञ्चक्रोशविशङ्कटं वरुणया चास्याच संवेष्टितं ।
भूभृद्भूषण वारणावत नितंबालंबियद्भ्राजते ॥
गंगा यत्र च गायतीव मधुरं सामोर्मितुङ्गस्वनै-।
स्तप्यन्ते च तपो वितृष्णमतयो यत्रोल्बणं साधवः॥ १ ॥
तत्रास्ते विश्वनाथः श्रीशक्त्यादि सहितः प्रभुः ॥

स्तवक, १८। श्लो. २१।२२.

अर्थात् पांच कोस तो जिसका विस्तार है; वरुणा और असी नदियां जिसकु संवेष्टन कर रही है. पर्वतभूषण वारणावत, (हिमागिरिका शाखापर्वत) के मध्य भागमें जो स्थित है; जहां गंगा भगवती अपना वेगवत्तर प्रवाहकी उर्मियों के उच्च मधुर स्वरोंसे मानों सामगान करती हुई मालुम पडती है; और जहां तृष्णारहित परमहंस साधुलोग अति कठिन तपश्चर्या कर रहे हैं.

उस पुण्यक्षेत्रमें श्रीविश्वनाथजी शक्तिसहित विराजते है.

फलतः ऐसे शुद्ध क्षेत्रके अधिष्ठाता श्रीविश्वनाथजीका यह स्तोत्र होनेसे, पठन करनेवालोंको अद्वितीय भक्तिज्ञान प्राप्त करा देता है यह द्वितीय अपूर्वता है.

जैसे कोई चारित्र्यहीन विद्वान् लोग, अपनी विद्वत्ताको दिखानेके लिये स्तोत्र बना देते हैं; ऐसा यह नहीं; किंतु इसको तो परमहंस ब्रह्मनिष्ठ स्वामीजी श्री तपोवनजी महाराज, जो परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, तेजोमय मूर्ति हैं; उन्होंने कोई चातुर्मास्यके समयमें श्री उत्तरकाशीमें, अपने हृदयांतर्गत शिवभक्ति उद्रेक से; प्रतिदिन नियमानुसार दश बारह श्लोक बनाके श्रीविश्वनाथजीकु सुनाना; ऐसे प्रायः देढ मासमें यह पवित्र स्तोत्र पूर्ण करके भगवान् सदाशिवको अर्पण किया.

अत एव ऐसे परमपवित्र शुद्ध चारित्रवान् भक्तिज्ञान युक्त महात्मा का बनाया हुआ स्तोत्र का पाठ करनेसेही अंतःकरण शुद्ध हो जाता है; और भक्तिभाव प्रगट होता है.

शुद्ध पुरुष प्रणीत यह स्तोत्रका पाठ, सर्वपापशुद्धिका हेतु होनेसे इसमें यह तृतीय अपूर्वता हे.

मैंने अचानक यह स्तोत्र पूज्य स्वामीजीकी पास देखके

पढा; मेरेको बडाही आनंद प्राप्त हुआ; और लोकोपकारार्थ यह छपवाना अच्छा है, ऐसी मेरी प्रार्थना उनकु ठीक लगी; अतएव इसको प्रकाश करनेका मैं भाग्यवान् हुआ.

इसमें कठिन शब्दोंपर जो टिप्पणी है वह भी पूज्य महाराजने बनाई हुई है. आशा है कि, उपनिषद् जाननेवाले और संस्कृतज्ञ पुरुषोंको तो इसके पढने मात्रसेही उपनिषदाभ्यास हो जायगा अतएव यह अमृतसमान है. और जिनको अर्थोपलब्धि नहीं है, उनको भी पाठसे परम चित्त शुद्धि होगी. यदि इश्वरइच्छा तो मैं यथा समय इसकी हिंदी टीका भी बनाके प्रकाश करनेका विचार करता हुं. इसको क्रमशः देखनेसे अंतर्गत रसिकता भान होती जायगी; और आप सहसा कहोगे कि ऐसा स्तोत्र तो अभूतपूर्व है.

इस ग्रन्थको मुद्रण करानेमें श्रीमान् मानशंकर भाई त्रिवेदीजीने जो सहाय किया है, और इसका खास मुद्रणकर्ता श्रीमान् प्रभाशंकर पाठकजी कि जिन्होंने मुद्रण कार्यमें अशुद्धि न रहजावे इस लिए अतीव परिश्रम किया है; अतएव उन दोनों सज्जनोंका मैं बडाही उपकृत हुं.

और इसके प्रकाशन कार्यमें जिन सज्जन पुण्यात्मा पुरुषोंकी ओरसे न्यूनाधिक आर्थिक सहाय दीगई है उन्होंका नाम कृतज्ञतापूर्वक यहांपर प्रकाशित करता हुं.

ब्रह्मनिष्ठ वेदांती	जीवीमाई जमनामाई,		ऋषीकेश यु. पी.
श्रीमान् शेठ	जीवराममाई मांडणभाई,		अंजार कच्छ,
,, ,,	डायाभाई कल्याणजी,	,,	,,
,, ,,	हरजीभाई गंगदास,	कुंभारीआ	,,
,, ,,	हरिदास विश्राम,	बम्बई,	
,, ,,	रणछोडदास मेघजी,	अंजार	कच्छ,

इत्योम् ।

अलमतिविस्तरेण.

हृषीकेश,
८ वी, अेप्रील १९३०.

आपका कृपाकांक्षी,
वल्लभराम शर्म्मा.
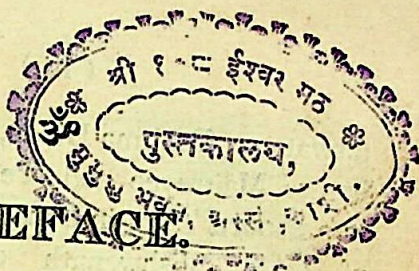
PREFACE.

Man ignorant of his true Divine Nature vainly tries to seccure happiness in the perishable objects of this illusary sense universe. He is thus caught up in the samsaric wheel of birth and death. He should always remember that the goal of life is God Realization and not money. The only way for his escape from the miseries of this mundane existence is through attainment of knowledge of Brahman, chiefly through devotion.

This book **Sree Saumya Kasisa Stotram** is written by H. H. Swami Tapovanji Maharaj, an eminent sanskrit scholar of high erudition, severe **tapas** and **adhyatmic**, Spiritual **anubhava.** It consists of 18 chapters. It contains the quintessence of 16 upanishads, 10 classical and 6 minor viz. Swe-

taswatara, Brahma Bindu, Kaivalya, Parama hamsa, Maitreyee and Tejobindu, expressed in a **stotra** form in Sanskrit Verse in praise of Lord Vishwanath of **Uttara Kasi**, Himalayas.

The famous Uttara Kasi is situated right in the centre of Himalayas. Its natural scenery is marvellously picturesque and un-precedented. The Spiritual vibrations are Soul-stirring and highly elevating. It is the best place which is specially suitable for contemplative life. Even a rank materialist and confirmed atheist will be forced to lead a life of dispassion and **tapas** of his own accord. The benign Soul-soothing, devotional influence is highly powerful. Right in the centre lies the magnificent and antique temple of Lord Vishwanath.

It seems that **Prakriti** has taken imm-ense trouble in the natural decoration of this place to make it very facinating for Spiritual aspirants. The hearts of aspirants are filled

with exhuberant joy and without serious efforts they are taken to a high, meditative devotional mood. The **Pranava dwani** proceeding from the sacred Ganges is highly beneficial to make the mind one-pointed. In winter the peaks all around are clad with snow and the snowy silvery peaks heighten considerably the beauty and grandeur of Uttar kasi. Ishwar's whole Vibhuti is centred in the natural scenery of the Himalayan heights. Any man who visits this place is struck with a high sense of wonder and admiration. Devotion arises in his heart and he is in tune with Nature and Nature's Lord. He becomes God intoxicated.

Having seated himself amidst such gorgeous, elevating atmosphere of Uttar kasi in the temple of Lord Vishwanath and heart being filled with profound devotion, Swami Tapovanji began to compose 10 or 12 slokas of this 'Sree Saumya kasisa stotram' daily and used to recite them before Lord Vishwanath while he was spending his **chaturmasya**

there in 1929. He finished the whole stotra within 41 days.

In this connection, it will not be out of place to mention a few words on devotion. In this kaliyuga, it is extremely difficult to practise Hatha and Rajayogas. The path of devotion and devotion alone is suitable for all. It is easy too. Any man can recite the name of God. Any man can sing his praise and Glory. It is quite safe also. Though Sree Shankara had refuted jiva and Ishwar, he himself was a Bhakta. He has made several **stotras** on various Deities. Though he severely condemned the Bhakti Shastra in his **Shariric Bhashya,** he was not an opponent of the path of devotion. When devotion is fully ripe **jnana** comes by itself. The vast majority of mankind have to get knowledge through devotion.

People of devotional temperament will find a treasure in this book of Stotras. They will develop strong devotion by repeating daily the stotras. Men of **vichar** also will find

substantial, ennobling ideas for philosophical ratiocination and reflection. That is the beauty and attractive feature of this book. The abstruse long portions of the Upanishads are rendered very, very clear and expressed in a lucid style and easy language without any technicality at all. The Author's views are in accordance with the doctrine of Shree Shankara.

This book is a masterpiece in style and thought. It is full of inspiring, sublime thoughts. It will doubtless greatly benefit those who are athirst for devotion and knowledge, who care for the deeper things of life and who are earnestly searching for the true inward bliss in the subjective, eternal, pure, **Satchitananda Atma.**

OM. OM. OM.

Rishikesh,
30th March 1930. } **Swami Sivananda.**

अर्पणम् ।

विश्वेश्वरस्य कृपया खलु तत्प्रयुक्तः
क्षुद्रोपलब्धिमकुटोऽहमकार्षमेतत् ।
तस्यार्पितश्चपदयोः स्तवकोपहारः
स्तोत्रात्मकस्सुरभिलोऽस्तु स सुप्रसन्नः ॥ १ ॥

(स्त. १८ श्लो. २५).

श्रीविश्वेश्वर की कृपासें और उसकीही प्रेरणासे
अत्यन्त कृशबुद्धियुक्त मैंने यह स्तोत्ररुप
सुगंधि पुष्पगुच्छोंका उपहार वनाया है,
और उसीकेहीचरणोंमें अर्पण किया है,
वह परमात्मा प्रसन्न हो.

ॐ तत्सत्

कर्ता.

ॐ तत्सत्
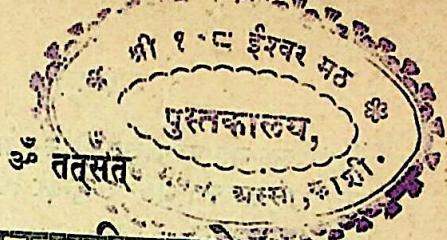
श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्रम्

प्रथमः स्तबकः

विश्वनाथ नमस्तुभ्यं विश्वमाया विलासिने।
काशिकेश नमस्तुभ्यं केशवाद्यर्चितांघ्रये ॥ १ ॥

विश्वंभर नमस्तुभ्यं विश्वविध्वंसमूर्त्तये।
विश्वरूप नमस्तुभ्यं विश्वसृड्दर्पहारिणे ॥ २ ॥

वामदेव महादेव देवदेव जगत्पते।
भव भक्त्या भजामि त्वद्भवच्छेदि पदांबुजम् ॥ ३ ॥

सौम्यकाशीपते तुभ्यं सौम्यमूर्त्ते नमो नमः।
सर्वदेव नमस्तुभ्यं सर्वदैवतरूपिणे ॥ ४ ॥

गंगाधरोऽपि भगवान् गंगारोधसि वर्तसे।
सोमसूर्याग्निनेत्रोऽपि सोमचूडश्च दृश्यसे ॥ ५ ॥

काशीपृष्ठे विहरसि विराण्मूर्त्तिरपि प्रभो।
को वेत्ति तव माहात्म्यं त्वदन्यः परमाद्भुतम् ॥ ६ ॥

---

१ गंगां शिरसि बिभ्राणः

गिरिराजसुतापुण्यपरिपाकोऽस्तु मे गतिः ।
सुरवृंक्षवृते यस्य मन्दिरे सुन्दरे स्थितिः ॥ ७ ॥

त्रिशूलरूपया शक्त्या हेरंबाद्यैश्च निर्जरैः ।
गोपकोटेश्वराभ्याञ्च संवृतं शंकरं भजे ॥ ८ ॥

वारिदाभंगलेगंगा वारिगौरं कलेवरे ।
वारणाद्रिपतिं वन्दे वारणाजिनवाससम् ॥ ९ ॥

कालकालं महाकालं कालव्यालविभूषणं ।
फालनेत्रं प्रणौमि श्रीकाशिकापतिमीश्वरम् ॥ १० ॥

भूतानामीश्वरं भस्मभूषाभूषितविग्रहम् ।
श्मशानशायिनं वन्दे जाटजूटकमस्तकम् ॥ ११ ॥

पुरत्रयनिषूदाय परमैश्वर्यधारिणे ।
परापराय रुद्राय परेशाय नमोनमः ॥ १२ ॥

करालं कालिकेशं नृकरोटीकलितस्रजम् ।
आशावासोवसानं श्रीविश्वनाथमुपास्महे ॥ १३ ॥

कालकूटाशिने तुभ्यं शैलकूटनिवासिने ।
शूलिने पालिने धन्वशालिनेऽस्तु नमो नमः ॥ १४ ॥

तुषारधवलांगोऽयं तुषारगिरिजाधवः ।
वृषाधिवाहनो हन्याद्वृषवन्द्योऽवृषद्विषम् ॥ १५ ॥

---

१ देवदारुतरुभिरावृते. २ गोपेश्वरेण कोटेश्वरेण च. ३ वारणावत नाम्नो गिरेः पतिं, तत्र निवसन्तामिति यावत्. ४ जाटजूटको जटाबन्धः ५ पापरूपिणं वैरिणम्.

अर्द्धनारीपते तुभ्यमध्वरध्वंसकारिणे ।
अघोराय नमस्साक्षादपारकरुणांबुधे ॥ १६ ॥

प्रसीद भगवन् शंभो प्रसीद वृषभध्वज ।
कुरुष्व कृपया नित्यं नृत्यमस्मन्मनोऽङ्गणे ॥ १७ ॥

त्र्यक्षोऽप्यसौ सप्तशिरांश्च[1] बिभ्रत्
सर्पस्रजं क्ष्वेलभुगष्टमूर्त्तिः ।
जेजीयते हन्त हिमाद्रि मध्ये
कपालभृत् कश्चन भिक्षुवर्यैः ॥ १८ ॥

कैलासशैले कलधौतधौतं
शैलेन्द्रकन्यामुपलालयन्तम् ।
आराध्यमानश्च सुरेन्द्रमुख्यै-
र्वाराणसीनाथमहं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

कुबेरमित्रं कुसुमेष्वमित्रं[2]
कारुण्यपात्रं करिराजपुत्रम्[3] ।
सरोजनेत्रं स्मितपञ्चवक्त्रं
सदा पवित्रं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥

अस्तु मे शरणं सौम्यकाशीनाथः स्वयं प्रभुः ।
यत्कृपालेशमात्रेण मर्त्योऽमर्त्यपदं व्रजेत् ॥ २१ ॥

---

१ सया जटया सह वर्तत इति ससं तादृशं शिरो यस्यास्ति सः
२ कुसुमेषोर्मन्मथस्य अमित्रं शत्रुम् ३ करिराजो गणेशस्सपुत्रो यस्य तम्.

विभो विश्वेश विश्वात्मन् विभाकर निभद्युते ।
विभातुमोहरजनीद्विभावो मेऽपसर्पतु ॥ २२ ॥

व्योमादि भूतानि भवत्स्वरूपं
देवादि देहाश्च भवत्स्वरूपं ।
जीवाश्च सर्वेऽपि भवत्स्वरूपम्
सर्वात्मनस्तेऽस्तु नमः पदाभ्याम् ॥ २३ ॥

त्वमेव विष्णुः कमला च दुर्गे-
त्युपास्यसे कल्पितमूर्त्तिभेदैः ।
काशीश सर्वेश्वर शर्वसर्व-
देवात्मनस्तेऽस्तु नमः पदाभ्याम् ॥ २४ ॥

शुद्धं शिवं बुद्धमबुद्धिगम्यं
ब्रह्मेति यद्वस्तु वदन्ति वेदाः ।
तत्त्वं[2] विभो विश्वपते न तत्त्वं
किञ्चित्परं तेऽस्तु नमः पदाभ्याम् ॥ २५ ॥

१ द्वैत भ्रमः २ तत् त्वमिति छेदः

द्वितीयः स्तबकः ×

येन वास्यमिदं सर्वं सर्वसन्यसनेन यः ।
लभ्यतेऽलुब्धशीलेन[1] तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १ ॥

काम्यनिष्कामकर्मभ्यां यो देवः संप्रपूज्यते ।
कर्मिभिः कर्ममर्मज्ञैस्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २ ॥

यदज्ञानहतामूढा भ्राम्यन्ते बहुयोनिषु ।
आत्महत्या[2]परिग्रस्तास्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ३ ॥

मनोऽतिवेगवत्तस्माज्जवीयस्तरमिष्यते ।
यदेकं सत्यमत्यक्षं[3] तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ४ ॥

यस्मिन् सति जगत्सर्वं सूत्रदेवेन धार्यते ।
नित्य चैतन्यरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ५ ॥

यच्चलं निश्चलं चैव निकटस्थं च दूरगम् ।
अन्तर्बहिश्च संपूर्णं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ६ ॥

स्वात्मायः सर्वभूतानामाश्रयत्वेन वीक्ष्यते ।
विद्वद्भिर्वीतधीदोषैस्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ७ ॥

×अस्मिन् स्तवके ईशकेनोपनिषदोर्विषयास्संग्रहेण संग्रथिताः तथा च तृतीये चतुर्थे च काठकस्य, पञ्चमे प्रश्नस्य, षष्ठे मुण्डकस्य, सप्तमे माण्डूक्य तैत्तिरीययोः, अष्टमे ऐतरेयस्य च विषयास्संक्षेपतस्समुद्धृताः॥

१ पुरुषेणेति शेषः २ आत्महत्या शुद्धात्मनि अशुद्धत्वाध्यासः ३ अतीन्द्रियम् ४ यदात्मतत्वामिति शेषः ५ उक्तात्मस्वरूपाय.

यन्मयं सति यद्बोधे विश्वं पश्यन्ति सूरयः ।
निश्शुचश्च विराजन्ते तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ८ ॥

शुद्धं सर्वत्र संव्याप्तं कायसंबन्धवर्जितम् ।
दृशिमात्र स्वरूपं यत्तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ९ ॥

धर्माधर्माद्यसंस्पृष्टः प्रजेशानां[1] च यः प्रभुः ।
स्वयंभूः परिभूश्चैव तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १० ॥

उपास्त्या कर्मणावापि यत्तत्वं नोपलभ्यते ।
ज्ञानगम्याय नित्याय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ ११ ॥

ध्यायिभिर्ध्यायमानं यत् प्राप्यमाणञ्च यत्पदम् ।
कार्यब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १२ ॥

चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणि तत्तत्कार्यंकराणि वै ।
यद्देवानुगृहीतानि तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १३ ॥

श्रोत्रादेरपि यं देवं श्रोत्रादिमनुदृश्य हि ।
महान्तो यन्ति निर्वाणं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १४ ॥

यत्र व्रजन्ति नो चक्षुर्वाङ्मनांसि मनागपि ।
न ज्ञातं यच्चनाज्ञातं तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १५ ॥

व्यज्यते यन्नवाचा यद्वाचं व्यञ्जयति स्फुटम् ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १६ ॥

मनुते न मनोयत्तु मनुते येन मानसम् ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १७ ॥

---

१ प्रजापतीनाम्.

श्रोत्रेण श्रूयते यन्न श्रोत्रं येन शृणोति वै ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १८ ॥

चक्षुषा दृश्यते यन्न येन चक्षुःप्रपश्यति ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ १९ ॥

प्राणेन चेष्टते यन्न येन प्राणः प्रचेष्टते ।
सच्चिद्ब्रह्मस्वरूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २० ॥

द्रष्ट्रा न दृश्यते यद्वै दृश्यते चाप्रपश्यता ।
शुद्धचिन्मात्ररूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २१ ॥

यस्सर्वबुद्धिवृत्तीनां साक्षित्वेन प्रकाशते ।
शुद्धचिन्मात्ररूपाय तस्मै श्रीशंभवे नमः ॥ २२ ॥

नियम्य दैत्यान् निजसेतुभेतॄन्[1]
सुरप्रियो यो हि जगत्प्रशास्ति ।
बुद्धायमापुश्च महेन्द्रमुख्या
महत्पदं तं भज विश्वनाथम् ॥ २३ ॥

विद्युत्प्रकाशायित[2] चित्प्रकाश-
श्चक्षुर्निमेषायित लोकसर्गः ।
इन्द्रादिगर्वापहरश्च विश्व-
मूर्त्तिश्च यस्तं भज विश्वनाथम् ॥ २४ ॥

---

१ स्वकल्पितधर्मभेदकान्. २ विद्युत् प्रकाशवत् युगपद्विश्वव्यापकं चिज्ज्योतिरिति भावः

तपश्च शान्तिस्सकलाश्च विद्या-
स्सत्यश्च यस्य प्रतिपत्तिहेतुः ।
सत्यं सकृद्भासुरमात्मविद्या
मूर्त्तिर्यतस्तं भज विश्वनाथम् ॥ २५ ॥

१ सर्वदा.

तृतीयः स्तबकः
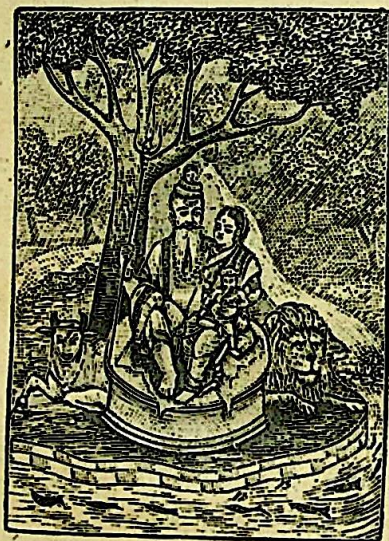
प्रतिष्ठा जगतः साक्षादग्निरूपेण यः प्रभुः।
यतश्च कर्मणां सिद्धिर्विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १ ॥

अस्ति नास्तीति यद्देवे विचिकित्सन्त्यपण्डिताः
नित्यसिद्धस्तु विदुषां विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २ ॥

देवैरपि महाप्रश्नैर्यस्मिन् संशयितं पुरा।
दुर्विज्ञेयस्तु सूक्ष्मत्वाद्विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ३ ॥

पुत्रपौत्रसमूहेन प्राज्यराज्यश्रियापि वा।
प्राप्तुं न शक्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ४ ॥

योगक्षेमनिषक्तानां प्रेयः पथविचारिणाम्।
क्रोशकोटिविदूरः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ५ ॥

त्यक्त्वा कामान् सुष्ठु धीरैः श्रेयः प्रार्थितया हृदि।
पूज्यते भाव्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ६ ॥

शृण्वन्ति बहवो यन्न श्रुत्वापि न विदन्ति च।
वक्तापि दुर्लभो यस्य विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ७ ॥

तर्कागम्या हि यद्बुद्धिर्देशिकोक्त्यैव गम्यते।
बहुधा चिन्त्यमानः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ८ ॥

---

१ विराड्रूपेण जगत् प्रतिष्ठात्वमग्नेः

आब्रह्मभुवनाद्यो हि विरक्तस्साधनान्वितः ।
तेनैव दृश्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ९ ॥

अध्यात्मयोगयुक्तेन चेतसा योऽनुचिन्त्यते ।
गुहाहितनिगूढः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १० ॥

श्रुत्या मत्या च यं लब्ध्वा मोदते मोदवारिधौ[1] ।
मोदनीयशरीरः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ ११ ॥

पुण्यपापात्पृथग्भूतः कार्यकारणतश्च यः ।
कालत्रयाच्च शश्वच्छ्री विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १२ ॥

यत्पदं गीयते वेदैः यत्पदं ब्रह्मचर्यया ।
दिदृक्षन्ते महान्तः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १३ ॥

प्रणवैकप्रकाश्यो यस्तत्प्रतीकश्च यः प्रभुः ।
परापरब्रह्मरूपो विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १४ ॥

शरीरे हन्यमानेऽपि न च हन्येत योऽजनिः ।
शाश्वतश्शाश्वदाभः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १५ ॥

कर्तृता कर्मता चैव यस्मिन्नध्यस्यते खलैः ।
वस्तुतोऽद्वैत मूर्त्तिः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १६ ॥

अणुभ्योऽणुतरो यश्च महद्भ्योऽपि महत्तरः ।
शोकराशिविमुक्तः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १७ ॥

आस्तेयातीव यः शेते विषीदति च हृष्यति ।
विरुद्धधर्मा विश्वात्मा विश्वनाथस्स मे गतिः ॥ १८ ॥

---

१ विद्वानिति शेषः

निर्वपुर्वपुरध्यक्षो नित्यनिर्वृतविग्रहः ।
व्योमवद्व्यापको यः श्रीविश्वनाथस्समे गतिः ॥ १९ ॥

वेदवेदांग पाठेन प्रज्ञया प्राभवेण वा ।
योऽयमात्मा न लभ्यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २० ॥

प्रेम्णा संप्रार्थ्य संप्रार्थ्य येन संधीयते[1] भृशम् ।
तेनैव लभ्यते यः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २१ ॥

अशनं यस्य देवस्य ब्रह्मक्षत्रादिकं जगत् ।
उपदंशस्तु मृत्युः श्रीविश्वनाथस्स मे गतिः ॥ २२ ॥

देहे रथे बुद्धि नियन्तृके यो
रथित्वमासाद्य चरत्यजस्रम् ।
भोक्ताऽपि सोऽदभ्रविचित्रलील-
स्त्वमेव विश्वेश निरञ्जनोऽपि ॥ २३ ॥

क्षतुस्सदश्वा इव यस्य वश्या-
न्यक्षाणि तत्प्राप्यमरूपरूपम् ।
वन्दे तमव्यक्तपरं पुराण-
मध्वावधिं[2] विष्णुमुमेशमारात् ॥ २४ ॥

क्षुरस्यधारावदतीव दुर्गं
यन्मार्गमाहुः कवयो विनिद्राः ।
अशब्दमस्पर्शमनध्रुवं तं
भक्त्या भजे भव्यनिधिं मृडेशम् ॥ २५ ॥

---

१ अनुध्यायते. २ अध्वनः संसारगतेरवधिम्.

चतुर्थः स्तबकः

पराग्[1]र्थसमर्थानि ससर्जाक्षाणि यः प्रभुः ।
अन्तर्नेदृश्यते तस्माद्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १ ॥

अध्रुवं कामजालं हि विहाय विगताशिषः ।
ध्रुवेच्[2]छया भजन्ते यं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २ ॥

रूपादि विषयान् सर्वान् येन चिद्धातुना जनाः ।
विजानन्ति दृगात्मश्री विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ३ ॥

स्वाप्निकं जाग्रतं चैव वस्तुजातंप्रकाशयन् ।
जागर्ति सर्वदा यः श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ४ ॥

प्राणादिधारकं जीवं प्रणिधाय यदात्मना ।
अभयं यान्ति सन्तः श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ५ ॥

सूत्रात्मा सूत्रधारोऽसौ जगत् सर्गादिनाटके ।
यस्मात् संपद्यते साक्षाद्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ६ ॥

अरण्योर्निहितो यस्तु याज्ञिकैस्समुपास्यते ।
आश्रया[3]शशरीरः श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ७ ॥

यस्मादुदेति सविता यस्मिन्नेव दिने दिने ।
अस्तमेति जगत्प्राणं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ८ ॥

---

१ शब्दादि बाह्यविषयप्रकाशकानि २ मोक्षेच्छया ३ आश्रयाशः अग्निः

ब्रह्मयज्ञासतेऽधर्मं देहधर्मेण दुर्धियाम् ।
नास्ति नानाऽद्वितीयं श्री विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ९ ॥

यस्मिन्नानात्वमापाद्य मायाविभ्रान्तदृष्टयः ।
मृत्युचक्रे भ्रमन्ति श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १० ॥

योऽङ्गुष्ठपरिमाणस्सन् मर्त्यानां हृदयांबुजे ।
निर्धूमवह्निवद्भाति विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ ११ ॥

प्रसन्नांभो यथाताहक् प्रक्षिप्तं शुद्धवारिणि ।
तद्वद्यद्विद आत्मास्याद्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १२ ॥

एकादशद्वारयुते पुरे यः प्रतितिष्ठति ।
राजवत्सूर्यसंकाशं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १३ ॥

प्राणापानौ नयत्यूर्ध्वमधश्चान्तरवस्थितः ।
देवाश्चोपासते यं श्रीविश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १४ ॥

यस्य विस्रंसने देहो निश्चेष्टः काष्ठखण्डवत् ।
प्राणस्वामिनमाराच्छ्री विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १५ ॥

प्राणापानौ यमाश्रित्य विधत्तः स्वस्वजीवनम् ।
विज्ञानघनमक्षयं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १६ ॥

निर्मिमाणो बहून् कामान् करणोपरमेऽपि यः ।
जागर्ति शश्वद्रूपं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १७ ॥

यथाग्निर्दाह्यभेदेन बहुर्भवति यस्तथा ।
देहेषु देहितामेति विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १८ ॥

---

१ तद्ब्रह्मरूपिणम् २ चक्षुरादयः

रूपंरूपमनुप्राप्य तत्तत्सारूप्यमृच्छति ।
यः परात्मा यथा वायुर्विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ १९ ॥

अक्षिदोषैर्यथा सूर्यो लोकदुःखैस्तथैव यः ।
लिप्यते नहि भूतात्मा विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २० ॥

नित्यानामपि यो नित्यश्चेतनानाञ्च चेतनः ।
सर्वज्ञं सर्वबुद्धिस्थं विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २१ ॥

ऊर्द्धमूलमधः शाखं छिनत्त्यश्वत्थमृद्धधीः ।
यत्कटाक्षकुठारेण विश्वेशं तमुपाश्रये ॥ २२ ॥

निरीक्ष्य वज्रोद्यतपाणिमीश्वरं
यथा भुजिष्यो[1]शिशिखिं[2] भास्वदादयः ।
विभक्त कृत्येषु तथैव यद्भयात्
चरन्त्यजस्रं कुरु तद्धरे रतिम् ॥ २३ ॥

बुद्धीन्द्रियाणां मनसश्चबुद्धे-
रचेष्टनं श्रेष्ठगतिर्हि योगः ।
निद्धर्यायते[3] तेन य ईशिभक्तिं
तस्मिन्नरूपे कुरु सत्स्वरूपे ॥ २४ ॥

उपासकैर्यः क्रमशोऽधिगम्य-
स्सुषुम्नया मङ्क्षु च वर्ष्मणो[4] यः ।
मुञ्जादिषीकेव विविक्तधीभि-
र्निष्कृष्यते तं भजकाशिकेशम् ॥ २५ ॥

---

१ किंकराः २ अग्निसूर्यादयः ३ दृश्यते ४ शरीरात्.

पञ्चमः स्तबकः

श्रद्धया ब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेन च ।
ब्रह्मयद्बुध्यते धीरैस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १ ॥

प्रजापतिशरीरस्सन् प्रजाः कामयते प्रभुः ।
तपश्च तप्यते दिव्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २ ॥

अग्नीषोमौ[1] सृजत्यादौ यः प्रजाकरणेच्छया ।
अन्नान्नभूतौ भूतेशं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ३ ॥

सूर्यात्मना सर्वं लोकचक्षुस्तपति रश्मिवान् ।
प्राणाश्रयश्च यो देवस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ४ ॥

संवत्सरं षट्चरणं[2] द्वादशाकृति[3] संयुतं ।
कालमूर्त्ति विधत्ते यस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ५ ॥

मासो दिनं ततश्चान्नमन्नाद्वीर्यं ततः प्रजाः ।
यत इत्थं प्रजोत्पत्तिस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ६ ॥

प्राणात्मना येन सर्व्यम्बाणमेतद्विधार्यते[4] ।
पञ्चवृत्ति विभक्तन तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ७ ॥

वरिष्ठप्राणदेवं यं प्राणास्सर्वेऽनुयान्ति वै ।
स्वराजं मक्षिकायद्वत्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ८ ॥

---

१ सूर्याचन्द्रमसौ २ चरणानिऋतवः ३ आकृतयो मासाः ४ शरीरम्.

अग्निरर्कश्च पर्जन्यो मघवाननिलोऽपि यः ।
प्राणात्मना जगत्सर्वं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ९ ॥

यस्मादुत्पद्यते प्राणश्छायावदनृताकृतिः ।
परस्मादक्षरात्त्र्यक्षं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १० ॥

नियुङ्क्ते प्राणरूपस्सन्नपानादीन् पृथक् पृथक् ।
सम्राडधिकृतान् यद्वत्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ ११ ॥

एकोत्तरशतं नाड्यस्सशाखा निस्सृताहृदः ।
व्यानाख्योऽटतियस्तत्र तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १२ ॥

इन्द्रियोपरमे भानु[1] रश्मिवद्धृदि दृश्यते ।
येन स्वप्नजमाहात्म्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १३ ॥

यदानिरुध्यते चित्तं तैजसा[2] सुप्तिमास्थितः ।
योऽश्नुते सुखमक्षय्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १४ ॥

विज्ञानात्मा सहप्राणैर्देवैर्भूतैश्च[3] संविशेत् ।
शान्ते स्वात्मनि यत्तुर्यं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १५ ॥

ओंकारायतनेनैतत् परञ्चापरमेव च ।
ब्रह्मयज्ञाप्यते भव्यैस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १६ ॥

ओंकारेण त्रिमात्रेण ध्यायी निष्पाप एष्यति ।
ब्रह्मलोकेन यद्ब्रह्म तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १७ ॥

---

१ यथास्तमये भानोरश्मय एकी भवन्ति तद्वदित्यर्थः २ नाडीशयेन पितेन ३ देवा अग्न्यादयः भूतानि पृथिव्यादीनि.

हृच्छयो निष्कलः स्वात्मा कलावानिव लक्ष्यते ।
अविद्याऽवद्यबुद्धेर्यस्तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १८ ॥

प्रभवन्ति कला यस्माद्यस्मिन्नेवापि यन्ति च ।
निर्विशेषे परे तत्वे तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ १९ ॥

यच्चिति व्यतिरेकेण कलाः कालत्रयेऽपि च ।
न तिष्ठन्ति ततो मिथ्या तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २० ॥

विज्ञानं क्षणिकं प्राहुश्शून्यमित्यपरे जनाः ।
कलाधारं यमात्मानं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २१ ॥

अनित्यो गुण इत्याहुर्भूत धर्मस्तथापरे ।
चैतन्यं यत्कलाधारं तमीडे मृडमीश्वरम् ॥ २२ ॥

प्राणं तथास्तिक्यमतिं खवायू
ज्योतिर्जलं भूमिमथेन्द्रियञ्च ।
मनश्च तेनेऽतनुहृग्यईश-
स्स विश्वनाथो भियमुच्छिनत्तु ॥ २३ ॥

अन्नं बलञ्चैव तपश्च मन्त्राः
कर्माथ लोकाश्च ततोऽभिधानम् ।
इत्थं कलाष्षोडश यस्ससर्ज
स विश्वनाथो भियमुच्छिनत्तु ॥ २४ ॥

स्वकारणे यत्र कलास्समग्रा
रूपञ्च नामात्मविदां विहाय ।
एकीभवन्त्यंबुनिधौ यथाप-
स्स विश्वनाथो भियमुच्छिनत्तु ॥ २५ ॥

षष्ठः स्तबकः

यत्स्वरूपं न निर्णेतुं देशिकोपनतिं विना ।
शक्यते पण्डितेनापि शं करोतु स शंकरः ॥ १ ॥

ज्ञाते यस्मिन्जगत्सर्वं ज्ञातं भवति भावुकः[1] ।
सर्परज्जुवदाधारश्शं करोतु स शंकरः ॥ २ ॥

परविद्यैव यत् प्राप्तौ साधनं कर्मकोटयः ।
कुण्ठी भवन्ति यस्याग्रे शं करोतु स शंकरः ॥ ३ ॥

दृश्य ग्राह्येतरो[2] गोत्रवर्णहीनश्च यो विभुः ।
चक्षुः श्रोत्रविनिर्मुक्तश्शं करोतु स शंकरः ॥ ४ ॥

ऊर्णनाभिर्यथा तन्तून् सृजते संहरत्यपि ।
एवं यस्सृजते लोकान् शं करोतु स शंकरः ॥ ५ ॥

तपसा[3] चीयमानाद्वै यस्मात्सूत्रादिकं जगत् ।
प्रादुर्भवति विश्वेशश्शं करोतु स शंकरः ॥ ६ ॥

कर्मणा बध्यते जन्तुस्त्यागेन तु विमुच्यते ।
विमोक्षरूपो यस्साक्षाच्छं करोतु स शंकरः ॥ ७ ॥

धर्माधर्मौ समुत्सृज्य यत्कृपानौकया बुधः ।
उत्तितीर्षेद्भवांभोधिं शं करोतु स शंकरः ॥ ८ ॥

---

१ मंगलतनुः २ अदृश्यः अग्राह्यश्च ३ आलोचनात्मकेन.

अविद्या तमसि भ्रान्ता मूढाः पण्डितमानिनः ।
पीड्यन्ते यत्पदभ्रष्टाः शं करोतु स शंकरः ॥ ९ ॥

इष्टापूर्त्तं श्रेष्ठमाहुर्ये जनाः कामकामिनः ।
भ्रमन्ति ते पदभ्रष्टाश्शं करोतु स शंकरः ॥ १० ॥

तपस्यन्तो वनान्तेषु भिक्षवश्चादिजान्तिकम्[1] ।
व्रजन्ति यत्पदभ्रष्टाश्शं करोतु स शंकरः ॥ ११ ॥

कर्मनिष्पादिते लोके निर्विण्णो यद्विवित्सया ।
उपेयाद् गुरुपादाब्जं शं करोतु स शंकरः ॥ १२ ॥

उपसन्नाय यत्तत्वं शमादिगुणशालिने ।
ब्रूयते देशिकेन्द्रेण शं करोतु स शंकरः ॥ १३ ॥

अग्निस्फुलिंगवद्भावा निस्सरन्ति यतोऽक्षरात् ।
सर्वेऽपि यत्र लीयन्ते शं करोतु स शंकरः ॥ १४ ॥

अन्तर्बहिश्च संपूर्णो मनः प्राणादिवर्जितः ।
अमूर्तो दिव्यमूर्त्तिर्यश्शं करोतु स शंकरः ॥ १५ ॥

द्युलोको मस्तकं यस्य चक्षुषीन्दुदिवाकरौ ।
दिशः श्रोत्रे पदं पृथ्वी शं करोतु स शंकरः ॥ १६ ॥

यस्माद्भवन्ति भूतानि वनपर्वतसागराः ।
यस्मात् स्रवन्ति गंगाद्याः शं करोतु स शंकरः ॥ १७ ॥

वर्णो[2] धनुश्शरोह्यात्मा शरव्यं ब्रह्मयत्परं ।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तः शंकरोतु सशंकरः ॥ १८ ॥

---

१ आदिजा हिरण्यगर्भः २ ओंकारः

शब्दजालं समुत्सृज्य रमन्ते यत्परात्मनि ।
निस्पृहा निखिलाधारे शं करोतु स शंकरः ॥ १९ ॥

पिण्डिकायामरा यद्भ्रमन्यो यत्र संहताः ।
तत्रास्ते बहुधा नृत्यन् शं करोतु स शंकरः ॥ २० ॥

यस्मिन् दृष्टे नष्टकर्मा छिन्नग्रन्थिरसंशयः ।
मृत्युमुक्तो भवेन्मर्त्यः शं करोतु स शंकरः ॥ २१ ॥

सूर्यसोमौ तथा विद्युद्यं न भासयितुं क्षमाः ।
यद्भासैते प्रकाशन्ते शं करोतु स शंकरः ॥ २२ ॥

वृक्षे समाने विहगौ निविष्टा-
वेकोऽश्नुते तत्फलमुच्चगोऽन्यः ।
पश्यन्ननश्नन्न भियस्सुखात्मा
तमीश्वरं सौम्यपुरीशमीडे ॥ २३ ॥

यत्सत्यवादेन सताधिगम्यं
संगम्य यन्नाति वदन्ति विज्ञाः ।
यत्क्रीडमात्मज्ञतमं समर्च्य
मर्त्योऽभ्युदेत्यस्तु गतिस्स शंभुः ॥ २४ ॥

कामैषिभिश्च बलरिक्तनरैरलभ्य-
स्सन्न्यासहीनतपसापि न लभ्यते यः ।
यल्लब्धितस्तु सुधियस्सरितो यथाब्धि
यं संविशन्ति विकलास्तमुमेशमीडे ॥ २५ ॥

---

१ विलीनकलाः

सप्तमः स्तबकः

प्रणवेनाभिधेयं यत् प्रणवैककलेवरम् ।
प्रणवेनोपलक्ष्यञ्च तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १ ॥

अयमात्मा परंब्रह्म ब्रह्मचैतच्चराचरं ।
चतुश्चरणसंयुक्तं तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २ ॥

जाग्रत् स्थानो वहिः प्रज्ञः स्थूलान् भुङ्क्तेहि योऽङ्गवान् ।
विश्वात्मना विश्वमूर्त्तिं तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ३ ॥

स्वप्नस्थानोऽवहिः प्रज्ञः सूक्ष्मान् भुङ्क्तेऽथ योऽङ्गवान् ।
तैजसी भूयविश्वेशं तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ४ ॥

सुप्तिस्थानो घनप्रज्ञः सुखं भुङ्क्ते च यः स्वयम् ।
प्राज्ञनाम्ना प्रबोधात्मा तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ५ ॥

अदृश्योऽव्यवहार्यो यश्शिवश्शान्तश्च निर्द्वयः ।
अप्रज्ञश्शुद्धतुर्यात्मा तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ६ ॥

अकारेण तथोकारमकाराभ्याञ्च संस्थितः ।
ओंकारात्मा यस्तुरीयस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ७ ॥

ओंकारात्मा महानिन्द्रः[1] प्रज्ञां प्रज्ञानमेव च ।
यो ददाति तदर्थिभ्यस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ८ ॥

अन्नपाने श्रियंगाश्च छात्रान् कीर्तिञ्च कीर्तितः ।
यो ददाति तदर्थिभ्यस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ९ ॥

---

१ परमेश्वरः

यद् व्याहृत्यात्मना पाङ्क्त स्वरूपेण च चिन्त्यते ।
चिन्तकैर्ब्रह्म निश्चिन्तैस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १० ॥

सत्योक्त्या धर्मचारेण स्वाद्ध्यायाध्ययनेन च ।
यद्ब्रह्म सेव्यते सद्भिस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ ११ ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मवुद्ध्वाविपश्चितः ।
भुञ्जते सकलान् भोगान् तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १२।

व्योमवातादिकं सर्वं संभूतं भूतभौतिकम् ।
प्रत्यगात्मात्मनो यस्मात्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १३ ॥

अन्नादि पञ्चकोशेभ्यो योऽन्य आनन्द आन्तरः ।
ब्रह्म[२]पुच्छं प्रतिष्ठा च तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १४ ॥

यद्ब्रह्म सद्धनं मूढो वेदयोऽसच्छरीरकम् ।
असन्नेव भवत्येष तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १५ ॥

जगत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशज्जीव भावभृत् ।
कमि[३]ता च तप[४]स्वीयस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १६ ॥

सच्चत्यच्चाभवद्ब्रह्म मूर्तामूर्तात्मकं जगत् ।
जडाजडविभिन्नं यत्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १७ ॥

रसवद्ब्रह्म यल्लब्ध्वा वुधः पिवाति यद्रसम् ।
रसं वाह्यं वहिष्कृत्य तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १८ ॥

---

१ चिन्ताऽत्र विजातीयवृत्तिः २ आनन्दमयात्मकस्य पक्षिणः पुच्छं ३ वहुस्यां प्रजायेय इति कामयमानः ४ जगद्रचनादि विषयकालोचनलं तपः कुर्वाणः

अदृश्येऽनाश्रयेऽनात्म्ये यस्मिन्ब्रह्मणि निष्ठया ।
अभयं विन्दते विद्वान् तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ १९ ॥

योऽद्वयैकरसे यस्मिन्नुदरं कुरुतेऽन्तरम् ।
सभयं विन्दते बालस्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २० ॥

भिया यस्माद्वाति वायुस्सूर्याग्नी तपतोऽनिशम् ।
धावतो मृत्युरिन्द्रश्च तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २१ ॥

यदानन्दमहांभोधेर्विप्रुषो हि वपुष्मताम् ।
ब्रह्मादीनां य आनन्दास्तं वन्दे काशिकापतिम् ॥ २२ ॥

संप्राप्य यद्ब्रह्मवचो विदुर-
मानन्दभाजोऽति तरन्ति भीतिम् ।
श्रेयोंऽहसी निर्दहतश्च नैतान्
सोदेतु चित्ते मम शंभुमूर्त्तिः ॥ २३ ॥

शाखानिशाधीश वदन्तरात्मा
योऽन्नादि कोशैरुपलक्ष्यतेऽद्धा ।
समाधि नोद्यत्तपसेन्द्रियाणां
सोदेतु चित्ते मम शंभुमूर्त्तिः ॥ २४ ॥

यद्ब्रह्मतामेत्य बुधोऽभिगाय-
त्यन्नं तथात्ताहमहो विचित्रम् ।
तयोश्च कर्त्ताप्यहमेव सर्वं
सोदेतु चित्ते मम शंभुमूर्त्तिः ॥ २५ ॥

---

१ उदपिअरमल्पं अल्पमपीत्यर्थः २ इन्द्रियाणां समाधानरूपेण तपसा.

अष्टमः स्तबकः

यः परात्मैक एवासीदग्रे किञ्चन नाभवत् ।
अन्यद्वस्तु सदाखण्डं काशीशं तमुपास्महे ॥ १ ॥

य ऐक्षत सृजे लोकानितिलोकान् ससर्जे च ।
अंभोमुखान् लोकपांश्च काशीशं तमुपास्महे ॥ २ ॥

अग्न्यादि लोकपालानां स्थानानि च पितामहः ।
पुरुषे निरणैषीद्यः काशीशं तमुपास्महे ॥ ३ ॥

देहे मुखमधिष्ठानमग्नेर्वायोश्च नासिके ।
रवेश्च नेत्रे यश्चक्रे काशीशं तमुपास्महे ॥ ४ ॥

दिशां तु कर्णौ शुभ्रांशोर्हृदयञ्च महाप्रभुः ।
योऽथनाभिं व्यधान् मृत्योः काशीशं तमुपास्महे ॥ ५ ॥

यो लोक लोकपालेभ्यस्सृष्टान्नञ्च पृथग्विधम् ।
प्राणेनाग्राहयद्धाता काशीशं तमुपास्महे ॥ ६ ॥

मूर्द्धानं प्रविदार्यैं तत् कार्यकारणसंहतिम् ।
प्रापद्यत च यः स्रष्टा काशीशं तमुपास्महे ॥ ७ ॥

विद्दतिर्नान्दनञ्चेति गीयते वेदपारगैः ।
यत्प्रवेशस्रुतिर्भक्त्या काशीशं तमुपास्महे ॥ ८ ॥

---

१ द्युलोकः द्युलोकात् परस्ताये महरादयो लोकास्ते चांभश्शब्दे भण्यन्ते.

तथा प्रविष्टो यस्साक्षाज्जीवभावेन वेश्मसु ।
त्रिषु संक्रीडते नित्यं काशीशं तमुपास्महे ॥ ९ ॥

जाग्रदाद्यभिमानेन संसरन् तद्गुणार्द्दितः ।
गुरूक्त्या ब्रह्म यः पश्येत् काशीशं तमुपास्महे ॥ १० ॥

गर्भबालजरत्त्वादि चक्रेऽस्मिन् जीवनामभृत् ।
योऽयं भ्रान्त्या बंभ्रमिति काशीशं तमुपास्महे ॥ ११ ॥

अविद्याजालकं भित्वा श्येनवत् यत्प्रबोधतः ।
निर्मुक्तो निश्चरेत् कश्चित् काशीशं तमुपास्महे ॥ १२ ॥

अविद्याकामकर्माणि विभिद्य विबुधाग्रणीः ।
यं[1] भवत्यात्मभेदे[2] श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १३ ॥

कोऽयमात्मेति संसाराद्भयाविवृत्सुभिरात्मनि ।
अन्विष्यतेऽन्वहं यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १४ ॥

चक्षुर्भूतेन मनसा नानारूपाणि पश्यति ।
प्रत्यात्मगात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १५ ॥

श्रोत्रभूतेन मनसा नानाशब्दान् शृणोति च ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १६ ॥

घ्राणभूतेन मनसा गन्धान् जिघ्रत्यनूनकान्[3] ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १७ ॥

वाणीभूतेन मनसा वक्तव्यं व्याकरोति च ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १८ ॥

---

१ यद्ब्रह्मभवति तद्ब्रह्मरूपिणं काशीशमिति संबंधः २ देहपाते ३ सर्वान्.

जिह्वाभूतेन मनसा जानाति विविधान् रसान् ।
प्रत्यगात्मात्मना यः श्रीकाशीशं तमुपास्महे ॥ १९ ॥

संज्ञानाज्ञानविज्ञान प्रज्ञानानि च शेमुषी ।
यद्ब्रह्मणोऽभिधाः[1] श्रीमत् काशीशं तमुपास्महे ॥ २० ॥

दृष्टिर्धृतिश्चमननं मनीषाजूतिसंस्मृती ।
यद्ब्रह्मणोऽभिधाः श्रीमत् काशीशं तमुपास्महे ॥ २१ ॥

संकल्पोऽध्यवसायोऽसुस्तृष्णा स्त्रीसंगमस्पृहा ।
यद्ब्रह्मणोऽभिधाः श्रीमत् काशीशं तमुपास्महे ॥ २२ ॥

ब्रह्मात्वमद्रीशभिदद्रिशायिन्
प्रजाधिभूश्चादितिजास्त्वमेव ।
प्रज्ञातनुस्त्वं हि जगत् प्रतिष्ठा
ब्रह्मात्मनेतेऽस्तु नमो नमस्ते ॥ २३ ॥

त्वमेव खं वायुरथानलश्च
त्वमेव पाथः पृथिवी त्वमेव ।
प्रज्ञातनुस्त्वं हि जगत् प्रकाशो
ब्रह्मात्मने तेऽस्तु नमो नमस्ते ॥ २४ ॥

त्वमेव गावस्तुरगानगाश्च
खगाश्च यत् किञ्चिदिदं समग्रम् ।
प्रज्ञातनुस्त्वं हि जगद्बिभर्षि
ब्रह्मात्मनेतेऽस्तु नमस्सहस्रम् ॥ २५ ॥

---

१ संज्ञानादयः अन्तःकरणवृत्तिभेदाः २ उपलक्षकाणि. ३ अद्रीं-भिदिन्द्रः ४ प्रजापतिः ५ यतस्त्वं प्रतिष्ठा प्रकाशत्वेन (सत्तास्फूर्ति रूपेण) जगद्बिभर्षि धारयसि ततस्त्वमेवेदं समग्रमिति संबन्धः

नवमः स्तबकः *

उद्गीथवर्णे परमे परात्मा
श्रुत्येकसारे च गुणोपजुष्टे ।
उद्गातृवर्यैस्समुपास्यते य-
स्तमाश्रये सौख्यपुराधिनाथम् ॥ १ ॥

प्राणात्मनाऽध्यात्ममथाधिदैवं
सूर्यात्मना चाक्षर सुप्रतीके ।
उद्गीथवित् पश्यति यं हि देवं
तमाश्रये सौख्यपुराधिनाथम् ॥ २ ॥

ज्योतिर्मयश्मश्रुकचोऽर्क बिंबे
कञ्जे क्षणास्तिष्ठति योगिगम्यः ।
उन्नाम भूद्योय मृगादि गेष्ण-
स्तमाश्रये सौख्य पुराधिनाथम् ॥ ३ ॥

हृन्मन्दिरान्तः स्थितमात्मदेव-
मानर्चयं भूदिविषत् कुमाषैः ।
उषस्तिराधोरणं भुक्तशेषै-
स्तमाश्रये सौख्य पुराधिनाथम् ॥ ४ ॥

---

* नवमे दशम एकादशे च स्तवके छान्दोग्यस्थानां, द्वादशे त्रयोदशे चतुर्दशे च बृहदारण्यकस्थानाञ्च विषयाणां संग्रहः कृतः

१ रसतमत्वादि गुणविशिष्टे २ सौम्यपुरं सौम्यकाशीपुरम्
३ ओंकाररूपे श्रेष्ठतरप्रतीके. ४ छान्दोग्यप्रसिद्धः कश्चिदृषिः
५ आधोरणो हस्त्यारोहः

याः पञ्चसप्तापि च भक्तयस्त
द्युक्तस्य साम्नो य उपासितॄणाम् ।
तत्तद्धियाराति फलञ्च तत्तत्
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ५ ॥

यज्ञादिभिः कृच्छ्रमुखैस्तपोभि-
र्नापैतियं नैष्ठिकचर्ययेया वा ।
लोकस्तु लोको भवतीव धर्मै-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ६ ॥

तुर्याश्रमी तुर्यपदे हि यस्मिन्
धर्मोज्झिते ब्रह्मणि संस्थितस्सन् ।
अमृत्युभावं समुपैति शश्व-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ७ ॥

छन्दांसि सारो भुवि भूर्भुवःस्व-
स्तत्रापि तेषु प्रणवोऽखिलात्मा ।
अग्राहि धात्रा स तु यत् प्रतीक-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ८ ॥

आदित्यगात्रस्सुरमाक्षिकत्व-
मभ्यस्य सद्भीभिरुपास्यते यः ।
दिवादयो वंशमुखा हि यत्र
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ९ ॥

---

१ नैष्ठिक ब्रह्मचर्येण २ पुण्यलोकवान्.

गायत्र्युपाधेः पुरुषस्य यस्य
पादोऽस्ति सर्वं जगदात्मनिष्ठम् ।
पादत्रयं वैकृतदूरदूरं
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १० ॥

श्रोत्राक्षिवाक् प्राणमनोऽभिधानै-
र्द्वाःस्थैर्निरुद्धं नृपतेरिवैतत् ।
यद्ब्रह्मणो हर्म्यमगम्यमस्मा-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ ११ ॥

यज्ज्योतिषो लिंगमिहोष्णिमांगे
कर्णापिधाने चरवोऽन्तरंगे ।
यश्श्रूयते स्यन्दननिःस्वनाभ-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १२ ॥

यज्जांहि विश्वं यदनं च यल्लं
तस्मादिदं सर्वमुपास्यते ज्ञैः ।
ब्रह्मेति यत् संयत शेमुषीकै-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १३ ॥

मनोमयं भाकृति सर्व कर्म-
कामादि च प्राण कलेवरं च ।
ब्रह्मेति विद्भिः क्रियते क्रतुर्य-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १४ ॥

---

१ अविकारीति भावः २ अन्तःशरीरे ३ विद्वद्भिः

हृत् पुंडरीकांतरणीय आस्ते
श्यामाकतस्सर्षपतोऽपि वा यत् ।
ज्यायो दिवो ब्रह्म तथान्तरिक्षा-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १५ ॥

कोशाकृतिं यं परिकल्प्य केचित्
पुत्रस्य दीर्घायुरभीप्सयैव ।
ध्यायंति जापोपेहितं[1] कुबुध्नं[2]
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १६ ॥

यद् ब्रह्मबुद्ध्या मनसोऽभ्युपास
श्चतुष्पदस्य क्रियतेऽभियुक्तैः ।
वाक् प्राणचक्षुः श्रवणैरुमेशं
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १७ ॥

यद्‌ब्रह्मबुद्ध्या खमुपास्यतेऽधि
दैवं चतुष्पादनलानिलाभ्याम् ।
अर्केण दिग्भिश्च महद्भिरुच्चै-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १८ ॥

वातात्मना योऽग्निमुखान् हि देवान्
संवृङ्क्ते एषोऽनुविभाव्यतेऽतः ।
संवर्गधर्मेण महाविभूति-
स्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ १९ ॥

---

१ जपसहितम् २ कुः भूमिर्बुध्नो मूलं यस्य तम्.

प्राणात्मनाऽध्यात्ममपीक्ष्यते य-
स्संवर्गधर्मं ह्रशसध्यगच्छत् ।
शूद्रोऽपि जानश्रुतिरेत्यरैक्का-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २० ॥

प्रकाशवानेव मनंतवांश्च
प्रदीप्तिमानायतनी च पादाः ।
यद्ब्रह्मणो भान्ति विचिन्तकानां
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २१ ॥

चतुष्पदं ब्रह्म च षोडशांशं
समुद्धितं यन्मुनिरादिदेश ।
जाबालकायैतदनन्वयाय
तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २२ ॥

प्राणो ह्यसौ ब्रह्मनिरुक्तमेतत्
कं ब्रह्म खं चेत्यनलैस्त्रिभिश्च ।
कार्यंतराकारमकारणं य-
त्तमाश्रये सौम्यपुराधिनाथम् ॥ २३ ॥

वश्ये क्षणैश्शमपरैरपराजितैर्य-
श्चक्षुस्थ एष पुरुषः पुरुदृश्यतेऽस्य
स्थानेऽपि सर्पिरुदकं च न सिंचति श्री
विश्वेशमेतमभयं शरणं प्रपद्ये ॥ २४ ॥

---

१ ज्योतिष्मान् २ आयतनवान् ३ गौतमः ४ विषयपारवश्यराहितैः

चित्ते यदक्षिपुरुषेक्षकमर्चिरुच्चै-
र्घस्राज्र्जुनोदगयनानि[1] नयन्ति वैधीम्[2] ।
संवत्सरो रविशशांकशतह्रदाश्च
पश्चात् पुमान्पुरमुदेतु[3] स[4] विश्वनाथः ॥ २५ ॥

---

१ दिवसशुक्लपक्षोत्तरायणानि २ वैधींपुरं ब्रह्मलोकम् ३ चित्ते उं त्वित्यन्वयः ४ उक्ताक्षिपुरुषात्मक इत्यर्थः

दशमः स्तबकः

प्राणात्मना देहमुपाश्रितो यः
श्रेष्ठस्तथा ज्येष्ठतरश्च नित्यम् ।
वागादिकान् धारयतीच्छयैष
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १ ॥

श्रद्धादि जुह्वत्यनलेषु देवा
द्युलोकमुख्येष्वथ पूरुषात्मा ।
निष्पद्यते[1] पञ्चसु यः परात्मा
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २ ॥

पञ्चाग्नि विद्यो गृहमेधिवर्य-
स्तपोधनो नैष्ठिक वेदगश्च[2] ।
सौरायणं यन्ति हि यं न सद्यो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ३ ॥

पञ्चाग्निविद्यामपठन्निगूढां
यद्ब्रह्मबुद्धेरधिरोहिणीं प्राक् ।
प्रवाहणं क्षत्रियमेत्य विप्रो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ४ ॥

---

१ यः परात्मा पुरुषरूपेण निष्पद्यते इति योजना   २ वेदगो ब्रह्मचारी.

इष्टादि कृद्धूम निशासि तैष्षं-
ण्मासैश्च पित्रा नभसा च नीतः ।
चान्द्रीं पुरीमेति हयन्नयात्यों
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ५ ॥

खंवायुधूमाभ्रवलाहकाश्च
धारा च वृष्टेर्यवकादिरेतः ।
एतैः पतत्यत्र सयन्नयात्यों
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ६ ॥

कल्याणकर्मा कमनीययोनिं
कपूयकर्मा च कपूययोनिम् ।
प्रपद्यतेऽज्ञोहह यं न यात्यों
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ७ ॥

विद्याथवेष्टादि न सेव्यते यै-
स्ते यान्ति दंशादिपदं तृतीयम् ।
पथच्युता यत् पददूरदूरं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ८ ॥

कष्टागतिर्जन्म जरादि दुःखो-
त्कृष्टा हि यं संसरणस्य धीरः ।
तस्माज्जुगुप्सेत बुभुत्सँमानो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ९ ॥

---

१ असितः कृष्णपक्षः २ यं बुभुत्समानः इति योजना.

द्युमूर्द्ध मुख्यावयवैर्विशिष्टं
वैश्वानरं कृत्स्नमुपासते यम् ।
आत्मानमात्मन्यमलान्तरंगा
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १० ॥

प्रादेशमात्रं प्रभुमीश्वरं यं
वैश्वानरं ह्यश्वपतेरवायन् । [1]
विप्राश्च राजन्यपतेरजन्यं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ ११ ॥

येन श्रुतेन श्रुतमेव सर्वं
यच्चेन्मतं स्यान्मतमेव सर्वम् ।
यन्निश्चितं निश्चितमेव सर्वं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १२ ॥

विकार एतत् खलुनाममात्रं
जगद्यथा मृन्मयमाश्रयो यः ।
मृत्पिण्डवत् सन्तत सत्यमूर्त्ति-
र्नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १३ ॥

विकार एतत् खलु नाममात्रं
जगद्यथा हैममथाश्रयो यः
हेमोपमस्सन्तत सत्यमूर्त्ति-
र्नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १४ ॥

---

१ अवागच्छन्.

विकार एतत् खलु नाममात्रं
जगद्यथा पैण्डमथाश्रयो यः ।
पिण्डोपमस्सन्तत सत्यमूर्त्ति-
र्नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १५ ॥

अग्रे सदासीदसतः कथं स-
ञ्जायेत यत् सर्वमिदं ससर्ज ।
त्रिवृत् कृतैरग्निपुरोगमैरों
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १६ ॥

प्राणादि सम्यग्ध्रियते च येन
जीवात्मना विश्वमनुप्रविश्य ।
व्याकुर्वता नाम च रूपमस्मै
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥

वुद्ध्यादिमात्रान्वय जोहि यद्व-
दादर्शविंबः प्रतिभाति जीवः ।
या देवता न च्यवते महिम्नो
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १८ ॥

तेजोऽवुपृथ्वीमयमग्नितत्वं
तेभ्यो न भिन्नं न च वस्तुतस्सत् ।
तथा जगद्यस्य विकारमात्रं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ १९ ॥

---

१ पिण्डमयः २ तथा जीवः प्रातिभातीत्यध्याहारेण संवन्धः

तेजोऽबुपृथ्वीमय एष सूर्य-
स्तेभ्यो न भिन्नोऽस्ति विवेककाले ।
तथा जगन्नास्ति हिरुग्[1]यतोऽस्मै
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २० ॥

तेजोऽबुपृथ्वीमय एष चन्द्र-
स्तेषां हि रक्तार्जुनकृष्णरूपैः ।
रूपी भवत्येवमिदं यदीयं
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २१ ॥

तेजोऽबुपृथ्वी विकृतिश्च विद्यु-
द्विचारितेऽपैति तटित् प्रतीतिः ।
तथा यदग्रे न जगद्विभात्यों
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २२ ॥

अन्नस्य धातुर्जलतेजसोश्च
हृत्[2] प्राणवाचोऽणुतमोऽभिमानी ।
यस्तत्र कर्तृत्वपदे पतत्यों
नमश्शिवायास्तु नमोऽस्तु तस्मै ॥ २३ ॥

नाश्नाति पञ्चदश चेत् पुरुषो दिनानि
भायान्न षोडशकलः पठितं हि किञ्चित् ।
तस्मान्मनोऽन्नमयमंबु पिबेन्नवाघः
प्राणस्य तत्र[3] विहरन् गतिरस्तु शंभुः ॥ २४ ॥

---

१ हिरुक् पृथक् २ हृन्मनः ३ तत्रमनसि प्राणे च मनः प्राणमयत्वेन विहरन्निति भावः

पायादुपाध्युपहितः पुरुषोनुवेलं
ध्यायन्निव व्यवहरन्निव दृश्यमानः ।
यस्यां विविक्त्युपशमे परदेवताया-
मानन्दधाम्नि विनिमज्जति मां स शंभुः ॥ २५ ॥

१ विविक्तिर्विशेषविज्ञानम्.

एकादशः स्तबकः

शरीरशुङ्गो ह्ययमन्नमूल-
स्तस्यापि चापोऽग्निरपाश्च मूलम् ।
अग्नेश्च यन्मूलममूलमेत-
त्तंविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

यतो[1]ऽस्यवाणी मनसि प्रशास्य-
त्य[2]ने मनोऽग्नौ स च हव्यवाहः ।
यस्मिन्परे ब्रह्मणि चाप्रकम्प्ये
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥

अणिष्ठमात्मा जगतश्च मूलं
सर्वस्य साक्षात् सुधियो विदन्ति ।
यद्ब्रह्मसत्तत्वमसीति वाक्या-
त्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

प्रजास्तरूणां रसवं[3]त् सुषुप्तौ
संपद्य यस्मिन् सति निर्विशेषा[4]ः ॥
वाक्येन यत्तत्वमसीति वेद्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

---

१ यतो म्रियमाणस्य २ अने प्राणे ३ मधुदृष्टान्तः छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके नवमखण्डे द्रष्टव्यः ४ निर्विशेषा भवन्ति एकी भवन्तीत्यर्थः

अब्धेर्यथाब्धिं प्रविशन्ति नद्यो
व्याघ्रादयो यद्वदपियन्ति तद्वत् ।
वेद्यं विचारेण च तत्त्वमस्या-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

अजीवमेतन्म्रियते शरीरं
वृक्षोऽपि शुष्यत्यपजीवकश्चेत् ।
स एव सद्य त्रि[2]पदैकवेद्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

न्यग्रोधबीजाद्विटपीव जज्ञे
यतस्सतोऽणिम्न इदं समग्रम् ।
श्रद्धावता यत्त्रिपदैश्च वेद्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥

यथाप्सुलीनं लवणं न प[3]श्ये-
दणिम्न एवं यदलभ्यमक्षैः ।
ग्राह्यं च बुद्ध्या त्रिपदैर्गुरूक्तै-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ८ ॥

विक्रोशताऽबद्ध दृशास्वनीवृ-
न्नरेण गम्येत यथा यथोक्तम् ।
आचार्यवान्नृच्छति यत्त्रिशब्दै-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ९ ॥

---

१ सजीवो यत् सदेवेति योजना २ त्रिपदानि तत्त्वमसीत्येत
३ पुरुष इति शेषः ४ स्वदेशः ५ तत्त्वमसीति त्रिशब्दैः

मूर्खो मुमूर्षुस्सति यत् क्रमेण
विद्वान्मुमुक्षन्नपि तादृशैव ।
संपद्यते यत्र पदत्रयेण
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १० ॥

संपद्य यस्मिन्न बुधोऽबुधस्तु
प्रपद्यते जन्ममृषाभिसन्धः ।
ज्वलत्कुठार[1]ग्रहवन्निगम्यं
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ११ ॥

शास्त्राण्यधीत्यापि शुशोच मोहा-
न्महर्षि[2]रात्मानवबोधहेतोः ।
यदात्मया जीहशुगात्मतुष्ट-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १२ ॥

यद्ब्रह्मबुद्ध्याह्वयवाङ्मनांसि
संकल्पचित्ते च विचिन्तयन्ति ।
ध्यानञ्च विज्ञानमथोबलञ्च
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १३ ॥

अन्नञ्च पाथोग्निमनन्त[3]कञ्च
स्मृतिं तथाशा मथं सूत्रदेवम् ।
ब्रह्मेति यत् सुष्ठु विदन्ति सन्त-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १४ ॥

---

१ परशुग्रहणदृष्टान्तोऽपि तत्र षोडशे खण्डे द्रष्टव्यः २ नारदः ३ आकाशः.

सत्यस्य विज्ञानमथास्य तर्कः
श्रद्धास्य निष्ठाथ च हेतुरस्याः ।
तस्याः क्रिया यत् सुखमेव तस्या-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १५ ॥

सुखन्तु भूमा नहि सौख्यमल्पे
यस्मिन्नदृग्दृश्य विभित्तिलेशः ।
यो वै महिम्नि प्रतितिष्ठति स्वे
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १६ ॥

स्वात्माच्च भूमा पुरतश्चपश्चा-
द्यस्मात् समद्भूतमशेष विश्वम् ।
स्वाराज्यवान् क्रीडति यद्विजानन् ।
तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १७ ॥

आहारशुद्धौ खलु सत्वशुद्धि-
स्तस्याश्च भूमात्मनि निश्चलाध्रीः ।
यस्मिंस्ततश्चाखिल पाशमोक्ष-
स्तं विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

ब्रह्मालये दहरसत्मनि पत्मतुल्ये
यद्ब्रह्म खादपि महत्तरमन्तरास्ते ।
नांहो न तृड् क्षुदजरश्च विमृत्युशोक-
स्सत्येच्छ सत्यकलनश्च गतिस्स शंभुः ॥ १९ ॥

---

१ इन्द्रियसंयमः २ दहरमल्पतरम् ३ सत्यकामः सत्यसंकल्पः

यद्वत् सुवर्णनिधिमूर्द्ध्व चरा अपीमे
यद्ब्रह्महन्तहृदिशं ह्यनृतोपिधानाः।
यन्तस्तथाऽप्यहरहर्न लभन्त एत-
ल्लोकास्सुलोकनिलयोऽस्तु गतिस्स शंभुः॥ २०॥

यस्सेतुरेष जगतां विधृतिर्विभात-
श्शश्वन्न यत्र दिनरात्रिकथाप्रसंगः।
योषा वितृष्णमतिरेव न वाक्प्रवीणो
यं प्राप्तुमर्हति सदास्तु गतिस्स शंभुः॥ २१॥

नीलाश्च रक्तधवला हृदयस्य नाड्य-
स्सूक्ष्मा हि तत्र घृणयो मिहिरस्य तासु।
मूर्द्धन्यया रविमतो द्रुहिणं ततश्च
संयाति यद्दहरवित् स हरो गतिर्मे॥ २२॥

अक्षिस्थ एष पुरुषः खलु दृश्यते यो
ब्रह्मैतदेतदभयं ह्यसुरः प्रजेशात्।
श्रुत्वैवमंवुगतबिंबमवेक्ष्य चात्मा
यो देह इत्यधिजगाम गतिस्स शंभुः॥ २३॥

श्रुत्वा चाक्षुषपूरुषं गुरुमुखाच्छायेति जग्राह यं
पश्चाद्दोषमवेक्ष्य तत्र मघवान् शुश्राव यं स्वाप्निकम्।

---

१ स्त्र्यादि विषयतृष्णया वहिरपकृष्टचेतसः २ पित्रादि लोकानामाधारभूतः ३ विधारकः ४ रश्मयः ५ हिरण्यगर्भम् ६ विरोचनः ७ प्रजापतेः ८ य आत्मादेह इत्यधिगतवान्. ९ तदात्मरूपः

सौप्तश्चाप्रियवित्तिमन्धतमसं चात्रापि पश्यंस्तत-
स्तुर्यं ब्रह्मतया ग्रहीद्यमभयं दद्यात् स काशीपतिः ॥

मृत्युग्रस्तमिदं शरीरममृतो ह्यात्मा शरीरोज्झितः
देहाध्यासकृतं प्रियाप्रियशतं हित्वा च तद्भावनाम् ।
निष्पद्येत निजात्मनाऽऽत्मनिरतो विद्वानदभ्राब्दकै-
श्श्रुत्वेतीन्द्र[2] इयाय यत्परपदं पायात्स[3] काशीपतिः ॥

१ पुत्रादि मरणादीनामप्रियाणामनुभवम् २ इति बहुवत्सरैः श्रु
इन्द्रो यत् परपदमियाय इत्यन्वयः ३ तत्परपदात्मकः

द्वादशः स्तबकः

इयक्रतुप्राज्य समग्रकर्मभि-
स्समुच्चितो पास्तिभिरप्यतद्विदा ।
न लभ्यते भव्यमभव्य[1] वस्तु य-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १ ॥

प्रजेशमश्वं[2] स्यति मेध्यसैन्धवे
यमग्निवाय्वार्यमभावभृच्च यः ।
क्रियाफलं कारकमप्ययं विराट्
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २ ॥

यमश्मसंघट्टित पांसुपिण्डव-
द्विशीर्यते पङ्क[3]मभिद्रवत् स्वयम् ।
उपास्यरूपं ज्ञानरूपरूपिणं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ३ ॥

विराट् स्वरूपेण य एकलः पुरा
बिभाय[4] पश्चाद्बुबुधे न किञ्चन ।
मदन्यदस्तीति ततः कुतो भयं
तमाश्रयाम्युत्तर काशिकाधवम् ॥ ४ ॥

१ अभव्यं नित्यसिद्धम् २ अश्वमेधाधिकारीति शेषः ३ पङ्कं पाप्मा.
४ भीतवान्.

सुतात् सुवर्णादथ दैववित्ततो-
न्यतिप्रियोऽभ्यन्तर एष पूरुषः ।
विनङ्क्ष्यति ह्यन्यदशेषमात्मन-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ५ ॥

सुराश्च सर्वत्वमगुर्नरर्षयो
यदात्मबोधेन ततोऽभवं मनुः ।
रविश्च हेत्यैक्षत वामदेवतं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ६ ॥

स्तुतिप्रणामप्रणिधानपूजनै-
र्यदात्मनोऽन्यां भजतेऽनुदेवताम् ।
य आत्मघाती स पशुर्दिवौकसां
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ७ ॥

पितृस्वरूपेण च योऽन्नसप्तकं
विधाय जन्तून् विबुधान् पशूनपि ।
अभाजयत् स्वञ्च यथास्वमेव त-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ८ ॥

मनोमयः प्राणमयोऽथ वाङ्मयः
पितृत्वमासाद्य जिघत्सतीव यः ।
फलान्यजन्मा निजकर्मयन्त्रित-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ९ ॥

---

१ मनुः रविश्चाभवं इति वामदैवतं वामदेवः ऐक्षत दृष्टवान् ।
२ यथास्वं यथायोग्यम्

मनुष्यलोकस्स्वसुतेन कर्मणा
पितुश्च लोकस्सुरवेश्मविद्यया ।
विजय्य एतैर्नै विजीयते तु य-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १० ॥

भवोऽयमव्यक्त तदन्य लक्षण-
स्त्रयं हि वै नाम च रूप कर्मणी ।
अतो विरज्येत बुधो यदीप्सया
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ ११ ॥

रवीन्दु विद्युत् प्रमुखेषु पूरुषो
विचिन्त्यते ब्रह्म तदन्यदूचिवान् ।
अजातशत्रुर्मुनयेऽपि यत् परं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १२ ॥

हृदंबुजे व्योमनियत्र धीमय-
स्सुखेन शेते नृपबालविप्रवत् ।
अखण्ड सद्ब्रह्म तदेव साक्षिचि-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १३ ॥

विदन्ति यं प्राण शरीरकं शिशुं
शरीरमाधानममुष्य केचन ।
शिरोवराधानमथान्नबन्धनी
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १४ ॥

---

१ अव्याकृत व्याकृतात्मकः २ मुनिरत्र गार्ग्यः ३ सुषुप्ताविति शेषः
४ आधानमधिष्ठानम् ५ वराधानं प्रत्येकस्थानम् ६ अन्नमेव वन्धनरज्जुः

सदास्ति मूर्त्तं कुजलानलात्मकं
त्यदस्त्यमूर्त्तं मरुदंबरात्मकं ।
अतीत्य चैतेऽवधिभूर्विभाति य-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १५ ॥

न वित्तपूर्णा चलया च लभ्यते
यदात्मभावामृतभावनिर्वृतिः ।
सुखं[1] सुखान्याहरतीव वित्तवान्
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १६ ॥

यदात्मकामाय पतिः प्रियो भवे-
द्यदात्मकामाय च कामिनी प्रिया ।
यदात्मकामाय सुतःप्रियो भवे-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १७ ॥

यदात्मकामाय वसु प्रियं भवे-
त्तथा च लोकामरजन्तवः प्रियाः ।
यदात्मनोऽर्थे निखिलं च वल्लभं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १८ ॥

यदात्मनः प्रेष्ठतमस्य दृष्टये
श्रुतिर्मतिर्ध्यानमपि प्रकीर्त्यते ।
तथा विदन् ब्रह्मभवत्यशेषवि-
त्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ १९ ॥

---

१ अनायासेन.

यदात्मनोऽन्यत्र सुरादिकान् विदन्
पराक्रियेताज्ञतमस्सदुष्टुतैः ।
जगत्समस्तं हि सतत्वमात्मन-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २० ॥

न किञ्चिदस्ति व्यतिरेकताश्रिते-
स्ततस्तदात्मत्वमनात्मवस्तुनः ।
निनादवद्दुन्दुभिशंखयोर्भृशं
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २१ ॥

यथा पृथग्धूमकणा धनञ्जया-
त्तथर्ग्यजुस्साम च निस्सरन्ति हि ।
यतः परान्निश्वसितोपमं नरों-
स्तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २२ ॥

विलीयतेऽक्षे विषयस्तदात्मनि
धियाश्चसोऽप्यात्मनि यत्र शेमुषी ।
अनन्तविज्ञानघनेऽप्सुमुद्रवत्
तमाश्रयाम्युत्तरकाशिकाधवम् ॥ २३ ॥

लवणशकलमप्सु प्रास्तमस्तं गतं स-
त्तदनुपृथगमूभ्यश्शाक्यते नोद्ग्रहीतुम् ।

---

१ सतत्वं स्वरूपम् २ दुन्दुभिशंखदृष्टान्तौ बृहदारण्यके द्वितीयाध्याय-
गत चतुर्थ ब्राह्मणंद्रष्टव्यौ ३ धूमाश्च अग्निकणाश्च ४ परमात्मनः
५ प्रलयादिष्विति शेषः ६ मनसि ७ यथा आपस्समुद्रएकी भवन्ति
तद्वादित्यर्थः

विदपियदपियातस्तद्बुद्धिन्नमात्रो
भवति न बहुसंज्ञस्तं भजे विश्वनाथम् ॥ २४।

स्फुटसमुदितसम्यग्वित्तितो यस्य भित्ति-
र्व्यपसरति समूलं विश्वमात्मैव भाति।
तदनुकथमुतिष्ठेत् कर्तृकर्मक्रियादि-
व्यवहृति रसतीयं विश्वनाथस्समाऽव्यात् ॥
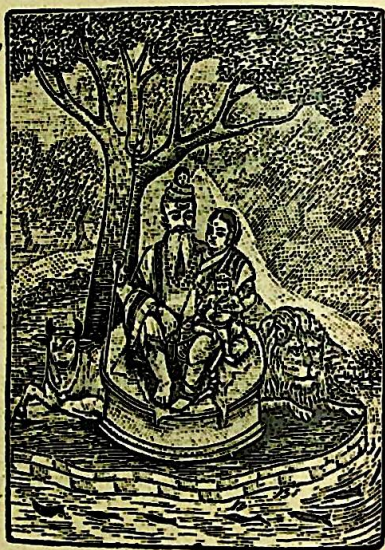
१ मात्रादेहेन्द्रियादयः २ संज्ञाविशेषज्ञानम्. ३ भेदः

त्रयोदशः स्तबकः

पृथ्वीसमस्तजनिमन्मधुजन्तुवर्गः
पृथ्वीमधुद्विविधपूरुष एष पृथ्व्याम् ।
सूर्यांश्च यस्य मधुतन्मधुकारणात्मा
ब्रह्मास्ति यत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १ ॥

पूषा समस्तजनिमन्मधुजन्तुवर्गः
पूष्णोमधुद्विविधपूरुष एष पूष्णि ।
नेत्रे च यस्यमधुसर्वमधूद्वहं स-
द्ब्रह्मास्ति यत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २ ॥

यद्ब्रह्मभूतविबुधे निखिलात्मभूते
भूतानि चेन्द्रियगणाभुवनात्मदेवाः ।
सर्वेऽर्पितास्सममरा इव चक्रनाभौ
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ३ ॥

योऽयं परात्परतरः पुरुरूपधारी
मायावशात् प्रतिशरीरमनुप्रविश्य ।
सर्वानुभूर्भवति निर्भयशोकमेकं
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ४ ॥

---

१ शरीरे २ भुवनानि भूरादीनि आत्मानो विज्ञानमयाः देवा अग्न्यादयश्च।

पुण्येन पापपटलेन च तत्तदेत्य
जन्मेह हन्त विषयेन्द्रियमृत्युचक्रे ।
भ्राम्यत्यनारतमवैति न मृत्युमृत्युं
यं कर्मठस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ५ ॥

पारिक्षित[1] प्रभृतयः पुरुपुण्यपुञ्ज-
भाजोऽपि सूत्रभुवनादि[2] भवप्रभेदान् ।
गच्छन्ति मोक्षभवनं न विशन्ति यस्य
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ६ ॥

साक्षाद्यदस्ति निखिलात्मकमात्मवस्तु
विश्वाति विश्वमथ संहति[3] सन्नियन्तृ ।
ब्रह्माद्वयं यदि तरत् खपुरीव चार्त[4]
रे रे मनस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ७ ॥

यद्ब्रह्म चैकमखिलान्तरमस्यवित्त्यै[5]
प्रत्यक् षडूर्मिरहितं गुणिनो[6] ह्यगौणम् ।
भिक्षार्थिनस्स्वयमटन्ति बुधा विधूय
विश्वैषणा[7]स्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ८ ॥

यद्ब्रह्मबोधमभिकांक्ष्य बुधानिरीहा
मुण्डाविवर्णवसनाश्च विवर्णलिङ्गाः[8] ।

---

१ पारिक्षिता अश्वमेधयाजिनः २ ब्रह्मलोकादि संसा[र] ३ संहतिः कार्यकरणसंघातः ४ आर्त विनाशि ५ बोधाय ६ [गुणि]गुणसंपन्नाः ७ सर्वा एषणाः ८ वर्णलिंगरहिताः

आरण्यकेषु विचरन्ति च यत् प्रबुद्धा
निष्किञ्चनास्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ९ ॥

निश्शेषमेतमवबुद्ध्य यस्मात्सविद्य-
द्विज्ञाननिष्ठितमतिर्मननैकशीलः ।
पाण्डित्यबाल्यमुनिताभिरकृत्यशेष-
स्सर्वोभवेत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १० ॥

यद्ब्रह्म सम्यगवगच्छति यो महात्मा
प्रत्यक्तया भवति विश्वतनुश्च विद्वान् ।
स ब्राह्मणस्स पुरुपूज्यतमस्स धन्य-
स्तस्मै नमस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ ११ ॥

वर्णाश्रमास्पृगशरीर पदे हि यस्मिन्
तादृग्धियैव विहरेदिह यो विपश्चित् ।
स ब्राह्मणस्स बहुमान्यतमस्स धन्य-
स्तस्मै नमस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १२ ॥

विप्रोहमाढ्यकुलवानिति मन्यमानो
न ब्राह्मणश्चिदहमित्यनुचिन्तयन् यत् ।
स ब्राह्मणस्स बहुमान्यतमस्म धन्य-
स्तस्मै नमस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १३ ॥

ओतश्चमिश्रितमिश्रित भूतवर्गे
प्रोतश्चसोऽथसकलाश्रयसूत्रदेवे ।

१ उपनिषत्सु अरण्येषुच. २ यदपरोक्षज्ञानिनश्च. ३ यश्चिद्रूपं ह्माहमित्यनुचिन्तयन्नस्तीति योजनीयम् ४ पञ्चीकृत भूतपञ्चकम्.

प्राणात्मनि स्वयमतर्क्यमहिम्नि सोऽप्यु-
द्भूतो यतस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १४ ॥

सूत्रञ्च संग्रथितसर्वजगद्यथा स्नक्
सूत्रेण तस्य च नियन्तृ यदन्तरस्थम् ।
जानन् भवत्यमरवित् स्वपरत्रयीवि-
न्निश्शेषवित्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १५ ॥

पृथ्व्यां स्थितोऽन्तरतरो यमकृच्च[2] पृथ्वी
यं वेद यस्य पृथिवी तनुरात्मभूतम् ।
सर्वस्य निर्वपुषमस्तसमस्तधर्मं
नारायणं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १६ ॥

तिष्ठन् जले नियमकृच्च जलस्य यो यं
नो वेत्ति कं जलतनुश्च जलान्तरास्ते ।
आत्मा च कृत्स्न जगतो ह्यभवी[3] च यः श्री
नारायणं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १७ ॥

भूतेषु तिष्ठति समेषु नियामकश्च
तेषां हि भूततनुरन्तरगश्च योऽसौ ।
नावैति भूततितिरात्मदृशिं च यं श्री
नारायणं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १८ ॥

द्रष्टा न दृष्टिविषयः श्रुतिगोचरो न
श्रोताऽमतो मननकृच्च न बुद्धिबोध्यः ।

---

१ स्वच्छपराणि भूतानि चवेंदांश्च वेत्तीति २ यो नियमकृद[illegible] ध्याहृत्ययोजनीयम् ३ असंसारी.

बोद्धा च योऽन्यरहितश्च यदन्यदार्त्तं
स्रक्सर्पवत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ १९ ॥

सर्वेऽपि येन विधृताः खलु लोकिलोकाः
सोऽव्याकृते नभसि तत्तु यदक्षरे च।
गांगेयकुण्डलनिभं प्रतितिष्ठति श्री-
सच्चिद्घनं तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २० ॥

अस्थूलमेतदनणुश्रवणाक्षिवाणी-
हीनं ह्यलोहितमबाह्यमनन्तरं च।
अप्राणमस्तगुणमस्ति यदेव भोक्तृ
भोज्येतरत्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २१ ॥

यस्य प्रशासनमहिम्न इमौ रवीन्दू
स्वस्वोदयास्तमयकर्मणि निष्ठितौस्तः।
स्वश्चस्थिरोऽस्थिरतरं स्फुटनाद्यपेतं
निस्तिष्ठस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २२ ॥

यस्य प्रशासनमहिम्न इमे च काला
मासर्तुवत्सरपराः कलयन्ति जन्तून्।
नद्यः स्रवन्ति धवलाद्धिमशैलतश्च
गंगादयस्तमनिशं स्मर विश्वनाथम् ॥ २३ ॥

यजनतपनबुद्धिर्बुद्ध्यते यन्न यस्सं-
सरति स कृपणो यस्त्वक्षरं ब्रह्मसम्यक्।

---

१ सूत्रदेवः २ सुवर्णकुण्डलन्यायेनेत्यर्थः ३ स्वर्द्युलोकः
४ स्थिरा भूमिः

विगतविषयतृष्णो वेत्ति स ब्रह्मभूतो
भवति भवविमुक्त्यै भावयेतद्भवांघ्रिम् ॥ २४ ॥

अचलितचितिमात्रं ह्यक्षरं ब्रह्म यद्वै
प्रचलिततनुतन्वां दर्शनादिक्रियाकृत् ।
सकल सजनुरन्तर्यन्तृचोपाधिभेदा-
द्भवति भवविमुक्त्यै भावयेतद्भवांघ्रिम् ॥ २५ ॥

१ तस्यभवस्य विश्वनाथस्य अंघ्रिंपादम्. २ देहे ३ सजनुषः प्रा

चतुर्दशः स्तबकः
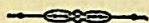
प्राणात्मनो यस्य महाविभूते-
र्विस्तारमात्रं हि समस्तदेवाः ।
अनंतसंख्या वसुरुद्रमुख्या-
स्स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १ ॥

सर्वेश्च नामांकृतिकर्मरूपं
प्रतिष्ठितं वै हृदि सा च देहे
उभे च यस्मिन् क्रमशः परस्मिन्
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ २ ॥

यन्नेति नेतीति निषेधवाचा
निर्दिश्यतेऽगृह्यमशीर्यमेतत् ।
असक्तबद्धा व्यथमात्मतत्वं
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ३ ॥

प्रत्यक्षतर्काद्यखिलप्रमाणैः
प्रमीयते न श्रुतिमूर्द्धभिन्नैः ।
यः पूरुषः प्रत्यगखण्डबोधः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ४ ॥

---

१ ब्रह्मविद्या प्रयुक्तां श्रियमित्यर्थः २ नामरूपकर्मात्मकम् ३ वेदान्तव्यतिरिक्तैः

वृक्षे विशीर्णे समुदेति बीजा-
न्नवीनवृक्षस्सदणिम्न इत्थम् ।
यतः प्ररोहन्ति मृता मनुष्याः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ५ ॥

विज्ञानमानन्दघनं यदस्ति
दातुः परं ब्रह्मफलं प्रयच्छत् ।
मुक्तोपसृप्यञ्च शिवं प्रशान्तं
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ६ ॥

वाक् प्राणचक्षुः श्रवणानि चिरं
ब्रह्मेति वुद्ध्वा हृदयञ्च विद्वान् ।
यद्ब्रह्म विज्ञातुमगौणमर्हं[1]
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ७ ॥

आदित्यचन्द्राग्निवचांसि यत्र
शाम्यन्ति मर्त्यः कुरुते तदात्वे ।
यज्ज्योतिषाकर्मनिजात्मरूप-
स्स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ८ ॥

यज्ज्योतिरन्तर्हृदि पूरुषाख्यं
परत्र चात्रापि मतिप्रधानम् ।
चरत्यथ ध्यायति खेलतीव
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ९ ॥

---

१ मुख्यम्.

यः पूरुषात्मा विषयेन्द्रियाद्यै-
स्संकीर्णभाजाग्रति भात्यकीर्णः
स्वप्ने स्वयंज्योतिरलुप्तदृष्टिः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १० ॥

रथान्तुरंगानथ राजमार्गान्
सरांसि योऽसौ सृजते स्रवन्तीः ।
मोद प्रमोदानपि पूरुषात्मा
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ ११ ॥

उच्चावचान् संस्कृतिमात्ररूपान्
निर्माय नारीनगरादिकान् यः ।
भुङ्क्ते स्वयंभास्सुविविक्तमूर्त्ति-
स्स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १२ ॥

स्वप्ने च यो जाग्रति जागरूक-
स्तत् पुण्यपापाननुबद्ध एव ।
संक्रीडतेऽयं पुरुषो ह्यसंगः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १३ ॥

यस्संप्रसादे च निजस्वरूपे
स्फुरत्यपास्ताखिलशतस्सुखात्मा ।
स्वयंप्रभोऽयं पुरुषो ह्यसंगः
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १४ ॥

---

१ सुषुप्ते.

स्वप्ने च यो जाग्रति मत्स्यतुल्य-
श्चरत्यथ श्येनवदात्मनीडम् ।
सुषुप्तमासर्पति पूरुषात्मा
स सौम्यनाथः श्रियमादधातु ॥ १५ ॥

सृष्ट्वा स्वप्ने विविधविषयान्
सूक्ष्मनाडीगतस्सन्
यद्यत् पश्याम्यहमुसकलं
तत्तदात्मैव साक्षात् ।
विद्वन् मूर्तिं र्ये इति मनुते
गाढसंस्कारतन्त्रः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसेनस्स भूयात् ॥ १६ ॥

कान्ताश्लिष्टः किमपि कमनो
वेत्ति नान्तर्न बाह्यं
यद्वत् स्वात्मन्यभयतृषि यः
प्राप्तनिर्भेदभावः ।
आनन्दात्मा स्वपिति च तथा
नीरुजः पूरुषात्मा
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ १७ ॥

---

१ महामत्स्यादिदृष्टान्ताः चतुर्थाध्याये तृतीय ब्राह्मणे द्रष्टव्याः
२ सौम्यस्य सौम्यकाश्या अधीशः ३ पुरुशो जीवः तद्रूपस्सन्.

पश्यन्नेव स्वयमचलचि-
दृश्यजातं न पश्य-
त्यन्यत् सुप्ते करणरहितः
प्राज्ञभावं प्रपन्नः ।
द्रष्टुर्दृष्टेर्भवति विलयो
नाविनाशित्वतो यः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ १८ ॥

स्वस्मादन्यत् स्फुरति तमसा
प्रत्युपस्थापितं सत्
तत्र द्वैते चरति पुरुधा
धीमयो यः परात्मा ।
दृष्टिघ्राति प्रभृति कृतिभि-
र्जाग्रत स्वाप्नभूम्न्योः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ १९ ॥

भाराकान्तं शकटमिव यो
लिंगमास्थाय विद्या-
कर्माश्लिष्टं वपुरभिनवं
पूर्वदेहात् प्रयाति ।

१ स्वस्मादन्यद्दृश्यजातम् २ कृतिभिरिन्द्रिय व्यापारैः

जाग्रत् स्वप्नक्रमवदमृतं
चात्ति जीवत्वभृच्छ्री-
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २० ॥

योऽयंमूर्द्धा नयनसुषिणा
वान्यरन्ध्रेण देहा-
न्निष्क्रम्यान्यत् सपदि वपुर-
ब्जन्तुवज्जीवमूर्त्तिः ।
धार्मं धर्मादथ च दुरिता-
द्दौरितञ्चाददीत
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २१ ॥

भोक्तुं भोगान् भ्रमति विषया-
सक्तितोऽत्राप्यमुत्र
ब्रह्मज्ञानादथ च जनुषे
नास्ततृष्णः स्वधिष्ण्यम् ।
प्राप्तः प्राणोत्क्रमणविरहा-
द्याति यो जीवमूर्त्तिः
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २२ ॥

---

१ कर्मफलम् २ अब्जन्तुस्तृणजलूका ३ स्वरूपभूतं
४ जनुषे न यातीति संबन्धः

जिज्ञासन्ते[1] यदिह विविधैः
कर्मभिर्निर्निमित्तैः
पुण्यापुण्ये तरति सुतरां
यद्विदन् ब्रह्मसाक्षात् ।
शेते यद्विद्बुधरगनि-
र्मोकवत् प्रास्तमारात्
सौम्याधीशः श्रितसुरतरुः
श्रेयसे नस्स भूयात् ॥ २३ ॥

शान्तिर्दान्तिस्तितिक्षा ह्युपरतिरथ य-
च्चित्तनैश्चल्यमेतै-
र्यायत् प्रत्यक् प्रपश्यत्यहमिदमिति स
ब्राह्मणो ब्रह्मतुल्यः ।
मुख्यं ब्राह्मण्यमेतन्न विकृत[2]सुकृतैः
क्षीयते वर्द्धते वा
वन्दे तं हैमभूमीधरशिखरलसत्
सौम्यकाशीपुरीशम् ॥ २४ ॥

पूर्णे पूर्णप्र[3]तिष्ठानिरुपचरित स-
द्वस्तु यद्ब्रह्म साक्षा-
दद्वयस्तैर्नामरूपैरुपहितपदवी-
माप्नवद्भूरि भेदैः ।

---

१ मनुजा इति शेषः २ अशुभशुभकर्मभिः ३ पूर्णस्य कार्यात्मकस्य ब्रह्मणः प्रतिष्ठा अधिष्ठानम्.

कर्मोपास्तिप्रकारैः कमितृभिरितरै-
श्चैतदाराध्यतेऽद्धा
वन्दे तं हैमभूमीधरशिखरलसत्
सौम्यकाशीपुरीशम् ॥ २५ ॥

१ फलकामनावद्भिः फलाभिसन्धिवर्जितैश्च.

पञ्चदशः स्तबकः *

काल एव जगन्मूलं स्वभाव इति चापरे ।
वदन्ति यमजानन्तः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १ ॥

भूतानि जगतो मूलं यदृच्छेति च केचन ।
जानन्ति यमजानन्तः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ २ ॥

गुणैर्निगूढो यो देवः कारणानाञ्च कारणम् ।
स एव जगतो मूलं स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ३ ॥

विश्वमाया विनाशस्स्याद्यस्य देवस्य दर्शनात् ।
अक्षरस्य क्षरेशस्य स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ४ ॥

क्लेशपाशापहानिस्तु देवं ज्ञात्वैव नान्यथा ।
ब्रह्मशब्दाभिधेयं यं स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ५ ॥

योनिनिष्ठो यथावह्निस्तद्वदात्मापि देहगः ।
योऽदृश्यो दृश्यतेऽभ्यासात् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ६ ॥

क्षीरे सर्पिर्यथा तद्वदात्मा यस्सर्वगोऽद्वयः ।
गृह्यते सत्यतपसा स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ७ ॥

---

* अस्मिन् स्तवके श्वेताश्वतरो ब्रह्मविन्दुश्च षोडशे कैवल्यं परमहंसश्च [illegible]दशे मैत्र्येयी तेजोविन्दुश्च सम्यक् संगृहीताः

१ क्षरं प्रधानम्.

समेदेशे विशुद्धे च गुहादौ वातवर्जिते ।
स्थित्वैव यमनुध्यायेत् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ८॥

यस्याभिव्यक्तितः पूर्वमर्कधूमादि दर्शनम् ।
संभवेद्योगिनां योगे स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ९ ॥

कृतार्थो भ्राजते योगी तेजोमयकलेवरः ।
प्रत्यक्षं वीक्ष्य यं साक्षात् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १०॥

विश्वबाहुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो विश्वभावनः ।
विश्वाधारश्चयो रुद्रः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ ११॥

ज्यायोऽणीयो वा न किञ्चिद्यस्मात् स्तब्धश्चकास्ति ।
वृक्षवन्मोक्षदो मोक्षः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १२॥

योषा पुमान् कुमारश्च कुमारी चास्ति यो विराट् ।
दण्डग्राही च जरठः स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १३ ॥

अजया[1] मोहितो भुङ्क्ते जनस्तां न जिहासति ।
गुणमय्या तु यच्छक्त्या स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १४॥

मायया सृजते विश्वं मायी यस्संगवर्जितः ।
अन्यस्तु[2] सज्जते तस्मिन् स शंभुः प्रीयतां प्रभुः ॥ १५॥

उपादानं माया शबलितपरब्रह्मजगतः
प्रधानं वाणुर्वा क्षणिकचिदसद्वा न भवति ।
निचाय्यैतद्योनिं[3] यदिह विबुधा निर्वृतिमिता-
स्सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १६ ॥

---

१ मायया २ जीवः ३ निचाय्य साक्षात् कृत्य.

तमो वा रात्रिर्वा दिवसगणना वा द्युतिरियं
नयत्रस्वस्मिन् यद्विलसति शिवं शान्तमतुलम् ।
न शून्यं नाशून्यं स जनुरजनुश्चापि यदहो
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १७ ॥

अधश्चोर्ध्वं पश्चात् पुरस्त इति सर्वासु नितरां
ककुप्सु भ्राजिष्णुप्रसृतमहमित्येतद्विषयः ।
निगूढं यत् पूर्वेऽविदुरपि विदन्त्यद्य सुधियः
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १८ ॥

परात्मा प्राच्यानां परिपचनकृत् प्रच्युतिस्मृती
विभीतो यस्माद्यः स्वयमसुभृतां कर्मफलदः ।
विधत्ते कर्माप्ति ध्रुवमथफलं तस्य विविधं
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ १९ ॥

न योषित् षण्डो वा न खलु पुरुषो वापि पुरुषैः
परात्मा योऽलिंगोप्यतनु तनुरूपैः प्रकृतिजैः ।
सलिंगः क्रीडत्यातनुरिदमवष्टभ्य भुवनं
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २० ॥

महिम्नायस्येदं भ्रमति भवचक्रं भवपते-
र्भ्रमेन्नो कालेन प्रकृतिवशतो वा न च भवेत् ।
भ्रमेनैष्कारण्यं शिवशिवतवैषोऽपि महिमा
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २१ ॥

---

१ सूर्यप्रकाशः २ दिक्षु ३ प्राणिनाम् ४ परिपूर्णः ५ स्थूलसूक्ष्मरूपैः
प्रकृतिः स्वभावः ७ भ्रमेनैष्कारण्यञ्च न भवेदिति योजना ८ जगत्
रणविषयको जगन्मोहः

न कार्यं यस्यैषन्न च करणमप्यस्य सदृशः
कनीयान् ज्यायान् वा न च गुणमयी यस्य विपुल
स्वतः सिद्धाशक्तिर्विलसति विबोधादि वपुषा
सदातद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २२ ॥

प्रधानक्षेत्रज्ञ प्रभुर्[1]भवहेतुर्[2]न च पति-
र्यदन्यः कश्चिद्यो जनयति विधिं[3] विश्वजनकम् ।
यदैश्वर्यात् स्फारं स्फुरति हृदये चास्य निगमः
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २३ ॥

अवुद्ध्वा[4] ब्रह्मैतद्यदि यदमृतं[5] याति मनुज-
स्तदा कुर्यात् कृत्तेरिव च वियतो वेष्टनमपि ।
मुमुक्षुर्यं विद्याद्विषयविधुरेणैव मनसा
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २४ ॥

निरुद्धे चित्ते तु स्फुरति परविद्या स्फुटमियं
महामोहध्वान्तं दलयति पलालोपममथ ।
निरर्थान् ग्रन्थौघान् त्यजति यदभिज्ञप्तिनिरतः
सदा तद्देवांघ्रिस्मरणमधुमत्तं भव मनः ॥ २५ ॥

---

१ ज्ञानेच्छा क्रिया स्वरूपेण २ मोक्षहेतुः ३ हिरण्यगर्भम् ४ ब्रह्मेति योजनीयम् ५ मोक्षम्.

षोडशः स्तबकः
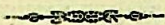
यमिह पश्यति चास्तिकतामति-
श्चरणभक्तिरचञ्चलधीरपि ।
इति गुणत्रयनेत्रयुतः पुमान्
स हृदि खेलतु सौम्यप्रतिस्सदा ॥ १ ॥

द्विविधकर्मचयेन तथात्मजै-
र्धनचयैश्च न कश्चिदवाप्नुयात् ।
यदवबोधजयत् पदनिर्वृतिं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ २ ॥

सकलसन्यसनं न ततोऽन्यतो
यदनुदर्शनसाधनमिष्यते ।
परमहंसपदात्मकमास्तिकैः
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ३ ॥

यतय एव यदात्मसमाधिना
सुखसरस्वतिमज्जितुमीश्वराः ।
गृहपरा न तथा गृहमेधिनः
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ४ ॥

---

१ ईश्वरपादानुरक्तिः २ श्रौतस्मार्तकलापेन ३ सुखसमुद्रे.

विमलचित्ततनुर्विजने जन-
श्शिवमवक्रतनुश्च विचिन्तयेत् ।
जितहृषीकगतिर्यमुतास्थिवान्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ५ ॥

असितकण्ठमुमेशमनद्भुतं
प्रभुमजं त्रिदशं परमेश्वरम् ।
हृदि दधीत तथायमनन्यधीः
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ६ ॥

यमनुसंदधदेवमुमाधवं
सुखचिदात्मकमात्मपदं मुनिः ।
सकलसाक्षिणमृच्छति चिद्घनं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ७ ॥

कमलजः कमलापतिरप्ययं
पशुपतिः सुरतारपती च सः ।
यमिह पश्यति यो निजहृत्तटे
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ८ ॥

पुरिशयं पुरुषं परमादरा-
द्यमनुवीक्ष्य विलंघयति क्षणात् ।
जनिमृती न विमुक्तिरितोऽन्यथा
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ९ ॥

---

१ विजने स्थाने तास्थिवान् यं विचिन्तयेदिति योजना
२ मुमुक्षुरिति शेषः

निरवशेषमवस्थितमात्मनि
स्वहृदयान्तरिदं हि चराचरं।
इति नितान्तमतिः पदमेति यत्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १० ॥

सुधिषणा प्रणवारणि घर्षणा-
ज्ज्वलित एष दहेज्ज्वलनो भृशम्।
यदवबोधतनुर्भवबन्धनीं[1]
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ ११ ॥

स्वयमसंगचिदुद्यदविद्यया
विपरिमूढ इवोढकलेवरः।
चलति यो ललनादिषु जाग्रति
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १२ ॥

अथ च यः करणोपरमेस्वयं
सृजति वासनया सकलं जगत्।
अथ निमज्जति गाढतमः प्रहौ[2]
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १३ ॥

निरुपमे निजधाम्नि निरंकुशे
सुखघनेऽस्तसमस्तभिदे हि यः।
स्वयमिह स्वमहिम्नि विराजते[3]
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १४ ॥

---

१ यदवबोधस्वरूपोज्वलनः २ प्रहिः कूपः ३ सुषुप्ताविति शेषः

स्वकृतकर्मनियन्त्रित एव यः
स्वभवनाद्विविनिष्क्रमते बहिः ।
व्यवहरत्यथ पूरुष भावभृत्
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १५ ॥

त्रिषु पुरेष्वयमेव मनारतं
चरति यः पुरुधा रचयन् स्वयम् ।
भुवनमेतदशेषमविद्यया
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १६ ॥

इदमखण्डचिति प्रविलीयते
सुखसरस्वति[1] यत्र पुरत्रयम् ।
उरगरज्जुनिभे[2] च निजात्मनि
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १७ ॥

अमृतमायतनं जगतो बृह-
त्तनुतमञ्च[3] सदाचिति वस्तु यत् ।
पुरुष एष तदेव चिरन्तनं
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १८ ॥

श्रवणदर्शनकृत् स्वयमद्वयः
श्रवणदग्रहितोऽपि महाद्भुतम् ।
चरणकृच्चरणञ्च विनैव य-
स्स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ १९ ॥

---

१ स्वरूपभूतात् सुषुप्तिस्थानात् २ सर्परज्जुवदा[illegible]
३ तनुतममत्यन्तमणुं.

स्पृशति नो सुकृतं न च दुष्कृतं
यमथ यस्य न धीवपुरिन्द्रियम् ।
जनिमृती च न भू[1]प्रभृतीन्यपि
स हृदि खेलतु सौम्यपतिस्सदा ॥ २० ॥

निरातङ्के यस्मिन् निरुपचरितब्रह्मणि सदा
मनोलीनं यस्य त्यजति ससुतान् दारसुहृदः ।
अथैकं कौपीनं विहरति गृहीत्वा विगतभीः
स शंभुः स्वाराज्ये[2] दिशतु वसतिं[3] सौम्यनिलयः ॥ २१ ॥

न शीतं नाप्युष्णं न सुखमसुखन्नापि निधनं
न मानामानौ छुत्क्षुदपि न पिपासा न विषयाः[4] ।
यदात्मक्रीडैकप्रवणधिषणस्यास्ति विदुषः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २२ ॥

नदंभो दर्पोऽहंकृतिरथ न निन्दास्तुतिरपि
न कामः क्रोधो वा कुणपमिव गर्ह्यं[5] स्वकवपुः ।
न शौद्रयं वैरूप्यं यत् परपरमहंसस्य विदुषः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २३ ॥

न दण्डी यः काष्ठग्रहणपटुरज्ञानजटिलः
स दण्डी ह्युद्दण्डान् सुदृढषडरीन् यो दमयति ।
धृतो यद्ब्रह्मण्यव्यभिचरितनिष्ठैकलगुडः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥ २४ ॥

---

१ भूम्यादि पञ्चभूतानि २ स्वयंप्रकाशे ब्रह्मधाम्नि ३ निष्ठाम् ४ शब्द-स्पर्शादयः ५ येनेति शेषः

अनिकेतो[1] यन्निष्ठः स्थिरमतिरनन्तोदवसितः[2]
हिरण्ये चातृष्णो रुचिरविषयेष्वात्मधनिकः ।
वरेण्यो यो भिक्षुस्सतु जयति नान्येऽघनिधयः
स शंभुः स्वाराज्ये दिशतु वसतिं सौम्यनिलयः ॥

१ अनिकेत इत्यर्थः २ अनन्ता वसुधा एव उदवासितं गृहं य

सप्तदशः स्तबकः

शिखरीप्रपतत्यथोदधिः
परिशुष्यत्यवनिर्निमज्जति ।
किमिहास्तिभवेऽभवं भवं
शरणं याहि शिवं शिवाधवम् ॥ १ ॥

अरसन्धतसः प्रहीनरः
प्लववद्धोरभवे विघूर्णति ।
गतिरत्र भवत् पदांबुजे
रतिरेवोत्तरकाशिकेश्वर ॥ २ ॥

मैथुनोत्थमतिमात्रकच्चरं
चात्रसूत्रकुहराद्विनिर्गतम् ।
गात्रमेतदसृगस्थिसाञ्चितं
तत्र किं कुरु रतिं त्रिलोचने ॥ ३ ॥

स्पर्शरूपरसगन्धनिस्वने-
ष्वाशया भ्रमति यः पृथग्जनः ।
तद्विपरीतमात्मवस्तु यत्
स्वस्तिदोऽस्तु मम तत्तनुश्शिवः ॥ ४ ॥

---

१ मूढः

प्राप्यते न तरसा तव तत्वं
प्राप्यते तु तपसान्तरनेधाः[1] ।
वीतिहोत्र इव वृत्तिनिवृत्या
शान्तिमेति तपसैव हि चित्तम् ॥ ५ ॥

चित्तमेव हि भवो निजचित्तं
शोधयेद्विविदिषुश्शिवतत्वम् ।
भावयेत् सरसमंघ्रिसरोजं[2]
काशिकेश तव चित्तसरोजे ॥ ६ ॥

हेयादेयाद्दूरतो निर्विशेषं
निस्सामान्यं चास्ति यत्तत्वमीडे ।
निर्वाणं तन्निर्वपुर्निर्विकल्पं
विश्वाधारं विश्वनाथाभिधानम् ॥ ७ ॥

शुद्धं बुद्धं नित्यमुक्तस्वभावं
सत्यं सूक्ष्मं संविदानन्दसिन्धुः ।
प्रत्यग्वस्तुप्रीयतां प्रेममूर्त्तिः
सौम्याकारं सौम्यकाशीश्वराख्यम् ॥ ८ ॥

तव हे शिवमन्दिरं शरीरं
शिवदस्त्वञ्च सदाशिवोऽन्तरात्मा ।
अहमस्मि शिवोऽद्वयः परात्मे-
त्यनुचिन्तापचितिस्तवेश्वरस्य ॥ ९ ॥

---

१ अनेधाः दग्धेन्धनः २ रसोऽनुरागो भक्तिः

कृतधीः कृतसंन्यसनो न वसे-
न्निजनीवृतिनिर्जितवृत्तिरयम् ।
शिवतावकनिष्कलरूपमलं
विदधीत हृदि प्रविविक्तपदे[2] ॥ १० ॥

नवामठं भीमवनं न वाश्रयेत्
कृतीकृतस्वात्मविनिश्चयस्सताम् ।
कटाक्षपातेन विपर्ययोज्झितः
कटाक्षपात्रं तव सौम्यराट् प्रभो ॥ ११ ॥

शिवविशायवतस्तवाद्वितीये
ह्यनुपहितात्मविशुद्धबुद्धमुक्ते ।
सुखमनतिशयं कदापि मोक्ष-
प्रभवमहो न भवेत् प्रमूढबुद्धेः ॥ १२ ॥

कर्मत्यागः प्रेषजपो वा न यतित्वं
भिक्षाशित्वञ्चापि यतित्वं न कथञ्चित् ।
शश्वन्निष्ठा संयमनोत्थैव यतित्वं
विश्वेशत्वद्धाम्नि विभो भूम्नि महिम्नि ॥ १३ ॥

अविद्यया शिव तव मोहिता जना
विचक्षणा अपि निगमेषु नैगमम् ।
पराङ्मुखाः खलु न विदन्ति पूरुषं
स्वचातुरीमुदरंभराय[3] बिभ्रति ॥ १४ ॥

---

१ निर्वासनः २ पदं स्थानम् ३ उदरपोषणाय.

मृदुपलमणिकाष्ठेष्वीशबुद्धिं वितन्वन्
भयकरभवयन्त्रे भ्राम्यति भ्रान्तचित्तः ।
भवभवद[1]भवन्तं वीक्ष्य मोक्षाय साक्षात्
प्रभवति[2] रवितुल्यं हन्त भान्तं हृदन्ते ॥ १५ ॥

धवलगिरिजाबन्धो
सिन्धोदुरन्त कृपांबु न-
स्त्वमणु न परिच्छिन्नः
छिन्नोपि कालदिगादिभिः ।
बहिरपि[3] भवानन्तः
पूर्णो यथांभसिकुंभिका[4]
बहिरपि सदाह्यन्तः
शून्यो यथांबरकुंभिका ॥ १६ ॥

न दर्शनमदर्शनं
न दृगदृक् च दृश्योद्गमो-
प्यदृश्यमपि यत्र हि
स्वपनजाग्रदस्तं गमः ।
निरस्त[5]कलनञ्च यत्
पदमहोदृषत् सन्निभं
त्वियं हि सहजस्थितिः
शिवं तवोत्तमाराधनम् ॥ १७ ॥

---

१ भवंद्यति खण्डयतीति भवदः तस्य संबुद्धिः २ मर्त्य इति ३ भवानन्तर्बहिरपि पूर्णं इत्यन्वयः ४ घटः ५ निस्संकल्पम्.

शिवोऽस्मि विमलोस्म्यहं
विशकलोस्मि बुद्धोऽस्म्यहं
सदस्मि सकलोऽस्म्यहं
सुखचिदस्मि शुद्धोऽस्म्यहं ।
इति स्फुटमनुक्षणं
च यदि वृत्तिरात्मोन्मुखी
त्त्वियं हि सहजास्थितिः
शिव तवोत्तमाराधनम् ॥ १७ ॥

अकार्यकरणोऽस्म्यहं
ह्यपगुणोऽस्मि पूर्णोऽस्म्यहं
अजन्मनिधनोस्म्यहं
निरुपमोऽस्मि नित्योऽस्म्यहम् ।
इति त्रिपथगांबुव-
द्यदि वहेत् सजातीयधी-
रियं हि सहजास्थितिः
शिव तवोत्तमाराधनम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मास्मीति निजान्तरात्मधिषणा
नैष्कर्म्यसत्कुंभकात्
सम्यग्ब्रह्ममयं समस्तमिदमि-
त्युद्दामदृष्ट्या तथा ।
सौख्याधीशविभो भवत्पदमुद-
स्ताध्यस्तभेदं बुधाः

१ आत्मवृत्तिनैश्चल्यरूपात् कुंभकात्.

संपश्यन्ति सदा सुरोधकलया
नासाग्रदृष्ट्या च किम् ॥ २० ॥

भाववृत्तिमथशून्यवृत्तिमति-
भक्तियोगबलपुष्कला
सन्निरस्य परिपूर्णवृत्तिमथ
पालयेद्बुधमतालिका ।
ब्रह्मवृत्तिमिह तावकीं परम
पावनीं न परिशीलये-
द्यस्स पूरुष पशुर्विपश्चिदपि
नोत्तरेद्भवसरित् पतिम् ॥ २१ ॥

त्वन्मयश्शिवविराट् च सूत्रमथ
विष्णुजिष्णुमुखदेवताः
त्वन्मयंशिव खवायुवायुसख-
वारिभूप्रभृति वैकृतम् ।
त्वन्मयं शिव यदस्तिभूतमथ
भावि सर्वमपि सौम्यराट्
त्वन्मयं यदि समस्तवस्त्वथ च
चिन्मयं तदथमन्मयम् ॥ २२ ॥

ब्रह्मैवाहं न जीवो जनिमृतिरहितः
सच्चिदानन्दसान्द्रः

१ प्रशस्तो बुधः २ वैकृतं प्रकृतिविकाराः ३ असुरोधः प्राणं

शत्रुर्मित्रं कलत्रं खगमृगभुजगाः
सर्वमात्मैव साक्षात् ।
बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियादि क्वचिदपि न मयि
श्लिष्टमश्लिष्टगात्रो
निश्चित्यैवं विपश्चिच्छिव तव विहर-
त्यात्मभूतो महात्मा ॥ २३ ॥

देशः कालोनिमित्तं कथमपि न जग-
ज्जन्मभंगादिकार्ये-
ष्वेवं सृष्टेरभावे क्व भवति भव भो-
भोक्तृभोज्यभोगप्रसंगः ।
बन्धो मोक्षश्च कस्यास्त्यखिलकृद्[1]खिलं
चेन्द्रजालोद्भवं त्व-
न्माया[2]कैवल्यमूलं श्रुतिरपिजगदु-
ज्जृंभणे बंभणीति[3] ॥ २४ ॥

कर्ता भोक्ता च भोगस्सुखमसुखमथ
स्वर्गतिर्दुर्गतिश्च
पुण्यापुण्यञ्च सर्वं विलसितमसतो
भाति तृप्येन्[4]मृगांभः ।

---

१ अखिलं करोतीति अखिलकृत् हे सर्वशक्त इत्यर्थः २ माया-कैवल्यं मायामात्रम् ३ तात्पर्येण निर्वदतीत्यर्थः ४ पिपासुर्मृगांभोमृग-तृष्णाजलं पीत्वा पीत्वा तृप्येद्यदीति सम्बन्धः

पीत्वा पीत्वा पिपासुर्यदि जगदुदितं
संभवेत् सत्यमेतत्
सौम्याधीशत्रिसत्यं तव वपुरमलं
त्वेकमेतन्नतोऽस्मि ॥ २५ ॥

१ त्रिषुकालेष्वपि सत्यम्.

अष्टादशः स्तबकः

योदेवस्सत् स्वरूपेण स्वस्मिन्नेव विराजते ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १ ॥

यो देवः सूत्ररूपेण जगत् सूत्रयति प्रभुः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ २ ॥

यो देवो विधिरूपेण जगत् सृजति राजसः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ३ ॥

यो देवो विष्णुरूपेण जगत् पुष्णाति शुक्लवान्[1] ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ४ ॥

यो देवो रुद्ररूपेण जगदश्नाति तामसी[2] ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ५ ॥

यो देवस्सूर्यरूपेण जगद्भासयते सदा ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ६ ॥

यो देवस्सोमरूपेण पुष्णात्योषधिवीरुधः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ७ ॥

यो देवो वृषरूपेण वर्षत्यंबुदवाहनः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ८ ॥

---

१ सत्वगुणवान् तदुपाधिकइति यावत् २ तामसो गुणः अस्यास्तीति तामसी.

यो देवो नृपरूपेण नृधर्मान् पाति धर्मवित् ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ९ ॥

यो देवो ब्रह्मरूपेण ब्रह्मवेदितुमिच्छति ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १० ॥

यो देवो धेनुरूपेण दुग्धं दुग्धे जगत् प्रसूः ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ ११ ॥

यो देवो व्याघ्ररूपेण गर्जत्यूर्ज्जो[1]वनान्तरे ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १२ ॥

यो देवः खगरूपेण द्रुतमुड्डयने दिवि ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १३ ॥

यो देवो वृक्षरूपेण स्तब्धश्छायां प्रयच्छति ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १४ ॥

यो देवस्तृणरूपेण हरिद्वर्णश्चकास्ति हि ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १५ ॥

यो देवस्सर्वरूपेण सर्वो भवति सर्वदा ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ॥ १६ ॥

प्रसीद भगवन् सौम्य काशिकेश कृपांबुधे ।
प्रसीदाविद्यकध्वान्तध्वंसहंस[2]निभप्रभो ॥ १७ ॥

---

१ ऊर्ज्जो विक्रमः २ हंसस्सूर्यः

यदि प्रसन्नो भवदंघ्रि सेवा-
रतिं प्रयच्छान्यदहं न याचे ।
निरस्तभेदभ्रमम्‍त्युपाशां
परां परानन्दकरीं परात्मन् ॥ १८ ॥

संपूरितमिदं स्तोत्रं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
श्रुत्यन्तसुमनोमाद्ध्वीह्वयमत्यन्तमुत्तमम् ॥ १९ ॥

जयत्युत्तरकाशीति सौम्यकाशीति च श्रुतम् ।
क्षेत्रं गोत्रकुलोत्तंस हिमवन्मंद्ध्यसंस्थितम् ॥ २० ॥

पंञ्चक्रोशविशंङ्कटं वरुणया
चास्या च संवेष्टितं
भूभृद्भूषणवारणावतनितं
वालंवियद्भ्राजते ।
गंगा यत्र च गायतीवमधुरं
सामोर्मितुङ्गस्वनै-
स्तप्यन्ते च तपो वितृष्णमतयो
यत्रोल्वणं साधवः ॥ २१ ॥

तत्रास्ते विश्वनाथः श्रीशक्त्यादिसहितः प्रभुः
स्तोत्ररत्नेन यो देवस्तुष्टुवेऽनेन सौम्यराट् ॥ २२ ॥

---

१ माध्वीमधु २ विशङ्कटं विशालम् ३ वरुणा असीत्युभाभ्यां सरिद्भ्याम् ४ दुस्सहम्.

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्रद्धयैतदनन्यधीः ।
स कामो लभते कामं निष्कामो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २३

केरलावनिसुतेन शोभनं
भूरिभाग्यनिधिनेदमीरितम् ।
भिक्षुणा हिममहीध्रशृंगिको-
त्संगवासरसिकेन केनचित् ॥ २४ ॥

विश्वेश्वरस्य कृपया खलुतत्प्रयुक्तः
क्षुद्रोपलब्धिमकुटोऽहमकार्षमेतत् ।
तस्यार्पितश्च पदयोः स्तवकोपहारः
स्तोत्रात्मकस्सुरभिलोऽस्तु स सुप्रसन्नः ॥ २५ ॥

इति श्री सौम्यकाशीशस्तोत्रं

१ उपलब्धिर्बुद्धिः अत्यन्तकृशबुद्धिरिति यावत् २ स्तवकाः गुच्छाः त एव उपहारः
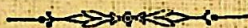
પુસ્તક મળવાનાં ઠેકાણાંઃ—

(૧) ધી જગદીશ્વર પ્રીંટીંગ પ્રેસ,
ગીરગામ ગાયવાડી, ઘર નં. ૯, મુંબઈ–૪.

(૨) વલ્લભરામ વિશ્વનાથ પંડિત,
મુ. પડધરી, કાઠીઆવાડ.

श्री

रामलीला

नाम

गीतिकाव्यम् ।

विषमपदव्याख्यासहितम्

बङ्ग-हि[illegible]भाषाभ्यामनुवाद-सम्वलितं च ।

श्रीश्यामाचरण-कविरत्नेन

विरचितम् ।

द्वितीयं संस्करणम् ।

"आ परितोषाद्द विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानाः मात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥"

कलिकातायां

३८ नं शिवनारायणदास-लेनस्थ-घोषयन्त्रे

श्रीमन्मथनाथघोषद्वारा मुद्रितं प्रकाशितं च ।

प्राप्तिस्थान—बेंगल मेडिकेल लाइब्रेरि,

२०१ नं कर्णवालिस् ष्ट्रीट ।

शकाब्दाः १८३०

मूल्य । चार आने ।

श्री

रामलीला

नाम

गीतिकाव्यम् ।

विषमपदव्याख्यासहितम्

वङ्ग-हिन्दी-भाषाभ्यामनुवाद-सम्बलितं च ।

श्रीश्यामाचरण-कविरत्नेन

विरचितम् ।

द्वितीयं संस्करणम् ।

"आ परितोषाद्‌ विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥"

कलिकातायां

३८ नं शिवनारायणदास-लेनस्थ-घोषयन्त्रे

श्रीमन्मथनाथघोषद्वारा मुद्रितं प्रकाशितं च ।

प्राप्तिस्थान—बेंगल मेडिकेल लाइब्रेरि, २०१ नं कर्णवालिस् ष्ट्रीट ।

शकाब्दाः १८३०

বিজ্ঞাপন।

সংস্কৃত ভাষায় প্রচলিত গদ্য ও পদ্যময় কাব্য অসংখ্যই আছে; কিন্তু গীতিকাব্যে মহাত্মা জয়দেব ভিন্ন এ পর্য্যন্ত আর কেহই প্রায় হস্তক্ষেপ করেন নাই। সংস্কৃত শ্লোক রচনা অপেক্ষা গীতি-রচনার যে বিলক্ষণ বিশেষত্ব ও কঠিনত্ব আছে, অপর কাহারও এ বিষয়ে হস্তক্ষেপ না করাই তাহার প্রধান প্রমাণ।

আমিও এত দিন এ বিষয়ে সম্পূর্ণ নিরুদ্যমই ছিলাম। পরন্তু গত বৎসর পণ্ডিতবর ৺ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর মহাশয়ের স্বর্গলাভ হইলে তদীয় শোকসূচক এত অধিক সংস্কৃত ও বাঙ্গালা গাথা প্রকাশিত হইয়াছিল যে, তাহার ইয়ত্তা করা যায় নাই। তৎকালে বঙ্গদেশীয় স্কুল-কলেজসমূহের কোন ছাত্রই বোধ হয় তাদৃশ এক একটি গাথা প্রকাশ করিতে উদাসীন ছিলেন না। তজ্জন্য "নিউ ইণ্ডিয়ান স্কুলে"র প্রথম শ্রেণীর ছাত্রগণ আমাকে একটি গাথা লিখিয়া দিবার জন্য অনুরোধ করেন। তাঁহাদের অনুরোধের বশবর্ত্তী হইয়া আমি "विद्यासागर-स्वर्गारोहण-गीतिः" নামে নিম্নলিখিত সংস্কৃত গীতটি রচনা করিয়া দিয়াছিলাম। যথা—

गुर्ज्जरीरागेण एकतालीतालेन च गेयम् ।

अपगतशोके शुभसुरलोके
वसति हि सागर एषः ॥ ध्रु० ॥१

भारतभाले क्वचिदपि काले
पुनरपि न हि सुखलेशः ।
व्रजति तदद्य त्यजति च सद्य
हृदमयमुपपन्नतदेशः ॥ २

ईश्वरचन्द्रे चलति सुधीन्द्रे
वियति मिलति सुरवृन्दम् ।
किरति परस्पर- मतिशयितादर-
ममल-विकसदरविन्दम् ॥ ३

रथमधिरोपय- दरमुपवीणय-
दनुसरति स्वयमेनम् ।
व्यजति निरन्तर- मुत्तमचामर-
मनुकृतसुरधुनिफेनम् ॥ ४

प्रगुणितसम्मदि निर्ज्जरसंसदि
सुरपति-दर्शितमानम् ।
सुरगुरुसहिते निवसति महिते
प्रचरति किन्नरगानम् ॥ ५

हाहा-हूहू- प्रभृतय आहू
रचित-ललित-गुणगाथाः ।
विदधति नृत्य- मपि परिवृत्य
सुरभिश्रुसङ्घ-सनाथाः ॥ ६

ददति सुरस्त्रिय आननसुप्रिय-
ममरतरुज-फलभारम् ।
अप्सरसां कुल- मुपहरतेऽतुल-
नन्दनकुसुम-सुहारम् ॥ ७

चिरसुख-मनुभव हे बुधपुङ्गव
सुरपरिषदि बहु मान्यः ।

পরমিহ সুহৃদং কুরু পুরুষমিমং
দীনশরণমিহ নান্যঃ ॥ ৮
ইদমুপনীতং সুরচিতগীতং
শিষ্যযুবদ্বয়-সকাশে ।
ভবদতিরুচিরং প্রচরতু সুচিরং
জগতি, চরণ ইতি ভাষে ॥ ৯

যদিও সংস্কৃত গীতি রচনায় সেই আমার প্রথম চেষ্টা, তথাপি ওই গানটি দেখিয়া সকলে সর্ব্বাপেক্ষা অধিক সমাদর করিয়াছিলেন এবং কোন কোন সংবাদপত্রেও উহা প্রকাশিত হইয়াছিল। তাহাতেই কিঞ্চিৎ উৎসাহী হইয়া একখানি সংস্কৃত গীতিকাব্য রচনা করিতে আমার ইচ্ছা জন্মে। কিন্তু সে বিষয়ে কৃতকার্য্য হইতে পারিব কি না, এই ভয়ে সহসা অগ্রসর হইতেও পারি নাই। যাহা হউক, "ক ঈপ্সিতার্থস্থিরনিশ্চয়ং মনঃ পয়শ্চ নিম্নাভিমুখং প্রতীপয়েৎ"—জল নিম্নাভিমুখে গমন করিতে থাকিলে তাহাকে প্রতিনিবৃত্ত করা যেরূপ দুঃসাধ্য, মন কোন কার্য্যে দৃঢ়নিশ্চয় হইলে তাহার গতিরোধ করাও সেইরূপ অসাধ্য। সেই অনিবার্য্য মনের বশীভূত হইয়াই আমি সম্প্রতি "রামলীলা"-নামক এই ক্ষুদ্র গীতিকাব্যখানি রচনা করিলাম।

আমাদের পুরাণাদি শাস্ত্রে রামচন্দ্র ভগবান্ বিষ্ণুর অবতার বলিয়া উক্ত হইয়াছেন। তাঁহার চরিত্র অতি নির্ম্মল ও আদর্শস্থল ছিল। সেই চরিত্র অবলম্বন করিয়া কবিগুরু মহর্ষি বাল্মীকি সপ্তকাণ্ডে যে সুবৃহৎ রামায়ণ গ্রন্থ রচনা করিয়া গিয়াছেন, তাহারই ছয় কাণ্ডের বিষয় অর্থাৎ রামের জন্ম হইতে রাজ্যাভিষেক পর্য্যন্ত ঘটনাগুলি এই ক্ষুদ্র কাব্যে পদ্যে ও গীতিচ্ছন্দে সংক্ষেপে বর্ণিত

হইয়াছে। সরল শব্দ বিন্যাস করিতে সাধ্যমত চেষ্টা করিয়াছি; কিন্তু মাধুর্য্যসম্পাদনে সমর্থ হইয়াছি কি না, বলিতে পারি না। তবে এইমাত্র সাহস আছে যে, ভাষাগত, ভাবগত ও অর্থগত নানাবিধ দোষ থাকিলেও ভগবান্ রামচন্দ্রের চরিত কিয়দংশে বর্ণিত হইয়াছে বলিয়া, ইহা স্বধর্ম্মপরায়ণ হিন্দু মহোদয়গণের নিকট একেবারেই উপেক্ষিত হইবে না।

সংস্কৃত ভাষায় পদ্য রচনা করিবার নানাবিধ ছন্দঃ আছে। তন্মধ্যে অনেকপ্রকার ছন্দঃ এই গ্রন্থে অবলম্বিত হইয়াছে। বিশেষতঃ কয়েকটি ছন্দের নাম উক্ত ছন্দে বিরচিত শ্লোকের মধ্যেই অর্থান্তরে সন্নিবেশিত আছে। যথা—দ্বিতীয় সর্গের তৃতীয় শ্লোকটি 'বসন্ততিলক' ছন্দে রচিত, ঐ শ্লোকের মধ্যেও 'বসন্ততিলক' শব্দ আছে। এইরূপ তৃতীয় সর্গের তৃতীয় শ্লোকে 'মালিনী' শব্দ আছে, ঐ শ্লোকটিও 'মালিনী' ছন্দেই রচিত। আরও কয়েকটি শ্লোকে এইরূপ দৃষ্ট হইবে। ঐ সকল ছন্দের সূত্র তত্তৎ শ্লোকের টীকায় প্রদত্ত হইয়াছে। ঐ সকল সূত্রে কয়েকটি সাঙ্কেতিক বর্ণ আছে। প্রায় সকল ছন্দোগ্রন্থের সূত্রই ঐরূপ সাঙ্কেতিক বর্ণে রচিত। সাধারণের অবগতির জন্য ঐ সকল বর্ণের অর্থ উদাহরণ সহ এই স্থানে প্রদর্শিত হইল।

"मस्त्रिगुरु-स्त्रिलघुश्च नकारो
भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो र लमध्यः
सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः॥"

ম=(৬ ৬ ৬) তিনটি গুরুবর্ণ * ; ন=(।।।) তিনটি লঘু-বর্ণ † ; ভ=(৬ ।।) ; য=(। ৬ ৬) ; জ=(। ৬ ।) ; র=(৬ । ৬) ; স=(।। ৬) ; ত=(৬ ৬ ।) ; গ=(৬) ; ল=(।) ।

যথা—বসন্ততিলক ছন্দের সূত্র—

"ज्ञेयं वसन्ततिलकं त-भ-जा ज-गौ गः ।"

উদাহরণ—

त	भ	ज	ज	ग	ग
जा त स्त्व	जः स्म र	गु रोः स्म	स्मि न स्व	यो	गी
त	भ	ज	ज	ग	ग
तु ङ्ग स्थि	ते वि धि	व शा दुग्र	ह्न प त्न	के	च
त	भ	ज	ज	ग	ग
प द्वे सि	ते ष्णु भ	दि ने दि	ति भे न	व	स्यां
त	त	ज	ज	ग	ग
चै त्रे व	स न्त ति	ल के ति	ल को र	घू	त्ताम्

বাঙ্গালা গীতির ন্যায় সংস্কৃত গীতিতে অক্ষর-সাম্য থাকে না ; মাত্রা-সাম্য অনুসারেই উহা রচিত হইয়া থাকে। লঘুবর্ণে এক

---

* सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्व्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥

(ং) অনুস্বারযুক্ত বর্ণ,(ঃ) বিসর্গযুক্ত বর্ণ, দীর্ঘস্বর (আ ঈ ঊ ৠ এ ঐ ও ঔ) বা তদ্‌যুক্ত বর্ণ, এবং যুক্তাক্ষরের পূর্ব্ববর্ণকে গুরুবর্ণ বলে। চরণের অন্তস্থিত বর্ণ আবশ্যক মত গুরু ও লঘু বলিয়া গণ্য হয়।

† যাহা গুরুবর্ণ নহে, তাহাকেই লঘুবর্ণ বলা যায়।

মাত্রা এবং গুরুবর্ণে দুই মাত্রা গ্রহণ করিতে হয় *। হ্রস্ব স্বরের উচ্চারণই লঘুবর্ণের উচ্চারণ এবং দীর্ঘ স্বরের উচ্চারণই গুরুবর্ণের উচ্চারণ। লঘু ও গুরুবর্ণের যথাযথ উচ্চারণ করিলেই মাত্রার প্রকৃত উচ্চারণ হইবে।

ইহাতে নিম্নলিখিত আটটি রাগ ও চারিটি তাল ব্যবহৃত হইয়াছে। রাগ যথা—

১ রামকিরী, ২ বসন্ত, ৩ গুর্জ্জরী, ৪ মালব, ৫ মালবগৌর, ৬ দেশাগ, ৭ দেশবরাড়ী ও ৮ বিভাস।

তাল যথা—

১যতি, ২একতালী, ৩অষ্টতাল ও ৪নিঃসারু।

বঙ্গবাসী সাধারণের পাঠসৌকর্য্যার্থে ইহা আপাততঃ বাঙ্গালা অক্ষরে মুদ্রিত করা হইল। অনুবাদটি সংস্কৃতের অবিকল রাখিয়া উৎকৃষ্ট বাঙ্গালা করিতে বিশেষ চেষ্টা পাইয়াছি। গ্রন্থবিস্তৃতিভয়ে

---

* "एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।"

১ রামকেলী (রাগিণী)। ৩ গুর্জ্জরী (রাগিণী)। ৪ মারোয়া (মতান্তরে রাগ)। ৫ মালিগৌর (উপরাগিণী)। ৬ (উপরাগিণী)। ৭ (উপরাগিণী)। ৮ (রাগিণী)।

(१) यतिताले ल द्रौ द लौ (। ० ० ।)॥

(२) एकताली चतुर्विधा। रामा च चन्द्रिका चैव प्रसिद्धा विपुला तथा। रामा द्रुतः (०), चन्द्रिका तु लविरामो गुरुर्भवेत् (। ऽ)। ल द्रुतौ लविरामश्च प्रसिद्धा (। ० ।), विपुला च गुः। दविरामौ लघुर्येव (˘ ० ।)॥

(३) अष्टतालख्या-मर्द्धविन्दुद्वयं द लौ (˘˘ ० ।)॥

(४) विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं निःसारी लघुरेव च (•• ।)॥

সমুদায় শ্লেষার্থ ও ভাবার্থের বিবৃতি করিতে পারি নাই। সুপণ্ডিত ভাবুকগণ সে সকল অনায়াসেই উপলব্ধি করিয়া লইতে পারিবেন।

পাথুরিয়াঘাটা-রাজবাটীর অধীশ্বর বিবিধোপাধিভূষিত সঙ্গীত-শাস্ত্রবিশারদ সুপণ্ডিত পরমশ্রদ্ধাস্পদ রাজা শ্রীল শ্রীযুক্ত শৌরীন্দ্র-মোহন ঠাকুর মহোদয় অনুগ্রহপ্রদর্শনপূর্ব্বক সবিশেষ যত্নসহকারে সুরের সহিত মিলাইয়া সমুদয় গীতগুলি দেখিয়া দিয়াছেন। ঈদৃশ ক্লেশ স্বীকার ও সাহায্য করণ জন্য তাঁহার নিকট আমি চিরকৃতজ্ঞতাপাশে আবদ্ধ থাকিলাম।

যাহা হউক, অজ্ঞলোক হইয়া এই নূতন বিষয়ে হস্তক্ষেপ করায় মনে সতত শঙ্কাকুল রহিলাম। ইহা প্রচার করিয়া সাধা-রণের নিকট উপহাসাস্পদ হইতে হইবে, ইহাই একপ্রকার স্থির করিয়া আছি। তবে বলিতে পারি না, গুণগ্রাহী সজ্জনগণ ইহাকে কিরূপ ভাবে গ্রহণ করিবেন।

শিবপুর, হাওড়া।
১লা ভাদ্র, ১২৯৯ সাল।

বিনীত
শ্রীশ্যামাচরণ কবিরত্ন।

द्वितीय संस्करणका विज्ञापन।

परम श्रद्धाभाजन कईएक हिन्दुस्थानी पण्डित यह पुस्तकको प्रत्यह स्तवस्वरूप पाठ करते हैं। उन लोगोंके मुखसे शुनकर अन्यान्य माड़वारीगणभी यह पाठ करने इच्छा करते हैं; किन्तु वे लोग बङ्गला अक्षर और बङ्गला अनुवाद नही समझनेसे दुःख प्रकाश करते हैं। अतएव उन लोगोंके अनुरोधसे इस वार यह पुस्तक देवनागर अक्षरमें मुद्रित किया हुआ एवं बङ्गला अनुवादके नीचे हिन्दी अनुवादभी प्रदत्त हुआ। मेरा परम बन्धु अशेष-गुणालङ्कृत श्रीयुक्त पान्नालाल वाहादुरने यह अनुवाद कर दिये हैं। अब स्वधर्म्मनिष्ठ माड़वारीगण यह सादरसे ग्रहण करनेसे चरितार्थ हुंगा इति संवत् १९६५, मुख्य चान्द्र आश्विन, विजया दशमी।

शिवपुर, हवड़ा।

श्री

रामलीला

प्रथमः सर्गः ।

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् ।
अभिरामश्च लोकानां रामो मे रमतां हृदि ॥ १ ॥
शीतांशुकुलजां वन्दे-ऽशीतांशुकुलगामहम् ।
शीतांशुदशनां देवीं शीतांशुभमयीं सतीम् (१) ॥ २ ॥

१। जो कल्पवृक्षका उद्यान (बगीचा), सब विपदोंका विनाशक, और सकल मनुष्योंका प्रिय, वही राम मेरे हृदयमें विहार करें।

२। जो चन्द्रवंशमें जन्मग्रहण कर सूर्य्यवंशके साथ मिलित हुये हैं, कर्पूरसरीका जिनका दन्तपंक्तिका आभा, वही मङ्गलमयी पतिव्रता सीतादेवीको मैं वन्दना करता हुं।

যিনি কল্পতরুর আরাম (অর্থাৎ উদ্যান), সকল বিপদের বিরাম (অর্থাৎ বিনাশক), এবং সমস্ত লোকের অভিরাম (অর্থাৎ প্রিয়), সেই রাম আমার হৃদয়ে বিহার করুন। ১।

যিনি চন্দ্রকুলে জন্মিয়া সূর্য্যকুলে গিয়াছেন, এবং কর্পূরের-

---

(१) सीताशब्दः तालव्यादिर्दन्त्यादिरपि अस्ति।

স্মরন্তং রাম-রামেতি তরন্ত-মুরুসাগরম্।
চরন্ত-মমৃতারামে (১) তং নমামি কপীশ্বরম্॥ ৩॥
চক্রে রামায়ণং চক্রং যেন রামকথারসম্।
সমাহৃত্য গতিঃ স স্যাদ্ বাল্মীকি-মধুকৃন্মম॥ ৪॥

৩। জো রাম রাম স্মরণ করতে করতে বৃহৎ সমুদ্র পার হোকর অমৃতকা উপবনমেঁ বিচরণ করতে হৈঁ, বহী কপীশ্বরকো প্রণাম করতা হুঁ। [হনূমান্‌জী উক্তরূপ কার্য্যকর জগৎকো জ্ঞাপন কিয়ে—রামনাম স্মরণ করনেসে অকূল ভবসাগর বিনা ক্লেশসে পার হোকর সবকোই অমৃতফল অর্থাৎ মোক্ষফল লাভ করনে সকে হৈঁ।]

৪। জো কি রামকথারূপ মধু সংগ্রহ করকে রামায়ণরূপ মধুচক্র বনায়ে হৈঁ, বহী বাল্মীকিরূপ মধুকর মেঁরা গতি।

ন্যায় যাঁহার দন্তপঙ্ক্তির আভা, সেই মঙ্গলময়ী পতিব্রতা সীতা দেবীকে আমি প্রণাম করি। ২।

যিনি রাম রাম স্মরণ করিতে করিতে বিশাল সাগর পার হইয়া অমৃতফলের উদ্যানে বিচরণ করিতেছেন, সেই কপিবর হনূমানকে প্রণাম করি। [হনূমান্ এইরূপ কার্য্য করিয়া জগৎকে শিক্ষা দিয়াছেন যে, যে ব্যক্তি রাম নাম স্মরণ করে, সে অপার ভবপারাবার পার হইয়া মোক্ষফলের উদ্যানস্বরূপ বৈকুণ্ঠলোকে বিহার করে] ৩।

---

(১) অমৃতস্য অমৃতাখ্যফলস্য আরামঃ উপবনং তস্মিন্। পক্ষান্তরে অমৃতেন মোক্ষেণ আরমতে অস্মিন্ ইতি অমৃতারামী বিষ্ণুলোকঃ তস্মিন্।

श्रीमद्राम-पदारविन्द-युगलं भव्यं भवाब्धिप्लवं
कैवल्यामृतधाम तापशमनं सद्भृङ्ग-संसेवितम्।
भक्ताना-मनिशञ्च मानस-सरस्युल्लासमानं स्मरन्
श्रीश्यामाचरणद्विजो वितनुते श्रीरामलीलामिमाम्॥५

रामाभिराम-गुणसिन्धु-निमग्नभूतं
चेतो मदीय-मचिनोदिह यं तदीयम्।
चारित्र-रत्ननिकरं रुचिरं विचित्रं
सद्ग्रन्थहारमिम-मारचयासि तेन॥ ६॥

५। रामचन्द्रजीका पादयुगल अतिशय सुन्दर, भवसागरका भेलास्वरूप, मुक्तिरूप मधुका आधार, सन्तापनाशक, साधुरूप भृङ्गगणका और भक्तजनोंका मानस-सरोवरमें सर्वदा विकसित, वह ही स्मरण करके श्यामाचरण नामधारी ब्राह्मण यह रामलीला प्रकाश करता है।

६। मेरा चित्त वही रामचन्द्रजीके गुण-सागरमें मग्न

যিনি রামকথারূপ মধু সংগ্রহ করিয়া রামায়ণরূপ মধুচক্র নির্ম্মাণ করিয়াছেন, সেই বাল্মীকি-মধুকরই আমার গতি। ৪।

রামচন্দ্রের যে পাদপদ্মযুগল অতিশয় সুন্দর, ভবসাগরের ভেলা-স্বরূপ, মুক্তিরূপ মধুর আধার, সন্তাপনাশক, সাধুরূপ ভৃঙ্গগণের সেবিত এবং ভক্তদিগের মানস-সরোবরে সর্ব্বদা বিকসিত, তাহাই স্মরণ করিয়া শ্যামাচরণ নামে ব্রাহ্মণ এই রামলীলা প্রকাশ করিতেছে। ৫।

सोऽयं सुवर्ण-परिरञ्जित-सर्वभागो-
ऽलङ्कार-शोभनतमो गुणसम्भृतात्मा।
सूत्रानुसार-विनिबद्ध-सुरम्यशब्दः
कण्ठे सतां विलसता-दनिशं सुखाय (१) ॥७॥

होकर उन्हींका जो आश्चर्यरूप चरित्र-रत्नसमूह संग्रह किया है, उसीसे मैंने यह सद्ग्रन्थरूप हार रचना किया है।

७। यह हार सुखदायक होकर साधुजनोंके कण्ठमें नित्य विराजमान रहे। (साधारण हारका सर्वांश सुवर्णसे रञ्जित रहता है) पर यह हार भी सु-वर्णसे (अर्थात् सुन्दर अक्षरोंसे) शोभित है। (साधारण हार अलङ्कारोंके बीचमें अति सुन्दर) यह हार भी अनु-

আমার চিত্ত সেই রামচন্দ্রের রমণীয় গুণসাগরে মগ্ন হইয়া, তাঁহার যে সুন্দর আশ্চর্য্যরূপ চরিত্ররত্ন-সমূহ সংগ্রহ করিয়াছে, তদ্দ্বারা আমি এই সদ্গ্রন্থরূপ হার রচনা করিতেছি। ৬।

এই হার সুখজনক হইয়া সাধুদিগের কণ্ঠে সর্ব্বদা বিরাজমান থাকুক। (সাধারণ হারের সর্ব্বাংশ সুবর্ণে রঞ্জিত থাকে) এ হারও সর্ব্বাংশে সু-বর্ণে (অর্থাৎ উত্তম অক্ষরে) শোভিত। (সাধারণ হার অলঙ্কারের মধ্যে অতিশয় সুন্দর) এ হারও অনুপ্রাসাদি

---

(१) सुवर्णं स्वर्णम्, अथच सु-वर्णाः शोभनानि अक्षराणि। अलङ्कारेषु मध्ये शोभनतमः, अथच अलङ्कारैः अनुप्रासोपमादिभिः शोभनतमः।

गीतम्।

(रामकिरीरागेण यतितालेन च गेयम्)

हरिरिह मानस-तामरसे (१)।
विकाशिनि विहरतु जातरसे (२) ॥ ध्रु० ॥८॥

प्रसादि अलङ्कारोंसे अति सुन्दर। (साधारण हार गुण अर्थात् लहरें एकट्ठा होकर उज्ज्वल होता है) यह हार भी गुण अर्थात् सरल शब्द विन्यासादि द्वारा उज्ज्वल है। (साधारण हार सूत्रसे ग्रथित होकर मनोहर शब्द धारण करता है) यह हार भी व्याकरणादिका सूत्र अनुसारसे मनोहर शब्द (अर्थात् पद) धारण करता है।

८। हरि मेरा यह सरस मानस-कमलमें विहार करते हैं।

অলঙ্কারে অতিশয় সুন্দর। (সাধারণ হার গুণ অর্থাৎ গুচ্ছে বদ্ধ হইয়া উজ্জ্বল হয়) এ হারও গুণ অর্থাৎ সরল শব্দবিন্যাসাদি দ্বারা উজ্জ্বল। (সাধারণ হার সূত্রে গ্রথিত হইয়া মনোহর শব্দ ধারণ করে) এ হারও ব্যাকরণাদির সূত্র অনুসারে বিন্যস্ত মনোহর শব্দ (অর্থাৎ পদ) ধারণ করিতেছে। ৭।

হরি আমার এই বিকসিত সরস মানসকমলে বিহার করুন।৮।

गुणैः स्तवकैः सम्भृतः परिपुष्टः आत्मा यस्य सः, अथच प्रसादादिगुणविशिष्टः। सूत्रानुसारेण सूत्रस्य अनुप्रवेशनेन विनिबद्धः ग्रथितश्चासौ सुरम्यशब्दः मधुरशिञ्जितविशिष्टश्चेति, अथच व्याकरणाद्युक्तसूत्राणा-मनुसारेण विनिबद्धा विन्यस्ता सुरम्यशब्दाः मधुरपदानि यत्र सः।

(१) मनसि। (२) रसः मकरन्दः, अथच अनुरागः।

गुणत्नयोत्तर- सर्वगुणाश्रय-
प्रधानपूरुषरूप:।
विश्व-विलायन- विलय-पयोनिधि-
समग्र-शम्बर-कूप: ॥ ९ ॥
सर्ज्जन-पालन- संहृति-कारण-
मपार-भवभय-वारी।
धृत-विविधाकृति- रनन्त-महिमा
दुरन्त-दितिकुल-दारी ॥ १० ॥
भास्कर-मण्डल- मण्डन-मुज्ज्वल-
कुण्डल-मण्डित-कर्ण:।

९। वे पुरुषरूपमें त्रिगुणातीत और प्रकृतिरूपमें त्रिगुणका आश्रय। वे विश्वसंच्चयकारी प्रलय-समुद्रके सब जलोंका कूपस्वरूप।

१०। वे सृष्टि स्थिति और संहारका कारण, वे नानाप्रकार आकार धारण करते हैं, उनका महिमा अनन्त, और वे अनन्त दितिकुल संहार किये।

তিনি পুরুষরূপে ত্রিগুণাতীত এবং প্রকৃতিরূপে ত্রিগুণের আশ্রয়। তিনি বিশ্বসংক্ষয়কারী প্রলয়-সমুদ্রের সমস্ত জলের কূপস্বরূপ। ৯। তিনি সৃষ্টি স্থিতি ও সংহারের কারণ, তিনি অপার ভবভয় নিবারণ করেন। তিনি নানাবিধ আকার ধারণ করিয়া থাকেন, তাঁহার মহিমা অনন্ত, এবং তিনি দুরন্ত দিতিকুল সংহার করেন। ১০।

अधिष्ठितो वर-   सरोरुहासन
मम्बुज-नाल-सवर्णः ॥ ११ ॥
विरिञ्चि-शङ्कर-   हृदय-सुपञ्जर-
सयत्न-निबद्ध-कीरः ।
प्रपन्न-भयहृद्   विपन्न-निर्ज्जर-
समूह-रक्षण-वीरः ॥१२॥
अहित-भयाकुल-   जगदवनाय च
सन्तत-विरहित-तन्द्रः ।

११। वे सूर्य्यमण्डलका भूषणस्वरूप, उनका कर्ण उज्ज्वल कुण्डलसे विभूषित। वे उत्कृष्ट पद्मासनमें अधिष्ठान करते हैं, और वे पद्मका मृणालकासा श्यामवर्ण।

१२। वे शुकपक्षीस्वरूप होकर ब्रह्माजी और शङ्कर-जीके हृदयपिञ्जरमें यत्नके साथ बधें हैं। वे शरणागत जनके भयहारी और विपद्ग्रस्त देवताओंका रक्षा विधानमें समर्थ हैं।

१३। जगत् अहितकारीओंके भयसे व्याकुल होनेसे

তিনি সূর্য্যমণ্ডলের ভূষণস্বরূপ, তাঁহার কর্ণ উজ্জ্বল কুণ্ডলে বিভূ-ষিত। তিনি উৎকৃষ্ট পদ্মাসনে অধিষ্ঠান করেন এবং তিনি পদ্ম-নালের সদৃশ শ্যামবর্ণ। ১১। তিনি শুকপক্ষিস্বরূপ হইয়া ব্রহ্মা ও শঙ্করের উত্তম হৃদয়-পিঞ্জরে সযত্নে আবদ্ধ আছেন। তিনি শরণাগত জনের ভয়হারী এবং বিপদ্গ্রস্ত দেবগণের রক্ষাবিধানে

श्यामाचरणक- हृदय-तमोहर-(१)
दशशतकर-कुल-चन्द्रः ॥ १३ ॥

दशास्य-राहुविध्वंस-कारकायाकलङ्किने ।
नमः श्रीरामचन्द्राय चाक्षुतायानपायिने ॥१४॥

उसका रक्षा विधानमें वे सर्वदा आलस्यको त्याग दे देते हैं। वे सूर्य्यवंशोंके चन्द्र ; चन्द्र जैसा तमः (अर्थात् अन्धकार) नाशक, वे भी वैसाही द्विज श्यामाचरणका हृदयस्थित तमः (अर्थात् मोह) नाशक।

१४। रामचन्द्रको प्रणाम करता हुं। राहुही चन्द्रका ध्वंससाधन करता है, उन्होंने रावणरूप राहुका ध्वंससाधन किया है। (चन्द्रमामें कलङ्क है) वह निष्कलङ्क। चन्द्रका क्षय है, वह अक्षय। इस कारण वह अद्भुत चन्द्र।

সমর্থ। ১২। জগৎ, অহিতকারীদিগের ভয়ে ব্যাকুল হইলে; তাহার রক্ষাবিধানে তিনি সর্ব্বদা আলস্য ত্যাগ করিয়া থাকেন। তিনি সূর্য্যকুলের চন্দ্র ; চন্দ্র যেমন তমঃ-(অর্থাৎ অন্ধকার-)নাশক, তিনিও সেইরূপ দ্বিজ শ্যামাচরণের হৃদয়স্থ তমঃ-(অর্থাৎ মোহ-) নাশক। ১৩।

রামরূপ চন্দ্রকে আমি প্রণাম করি। (রাহুই চন্দ্রের ধ্বংস সাধন করে) তিনি রাবণরূপ রাহুর ধ্বংস সাধন করিয়াছেন ; (চন্দ্রের কলঙ্ক আছে) তিনি নিষ্কলঙ্ক ; (চন্দ্রের ক্ষয় আছে) তিনি অক্ষয় ; সুতরাং তিনি অদ্ভুত চন্দ্র। ১৪।

---

(१) तमः अन्धकारः, अथच मोहः।

इक्ष्वाकुवंशामृत-सिन्धु-चन्द्र
सीता-विलोलाक्षि-चकोर-चन्द्र।
क्रव्याद-वंशाम्बुज-वृन्द-चन्द्र
नमो नमस्ते प्रभु-रामचन्द्र॥ १५॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां रामलीलायां
गीतिकाव्ये मङ्गलाचरणं नाम
प्रथमः सर्गः॥ १॥

१५। हे प्रभु रामचन्द्र, तुम इक्ष्वाकुवंशस्वरूप सुधासिन्धुका चन्द्र (अर्थात् उसीमें उत्पन्न भये हो), सीताजीका सुचञ्चल नयनरूप चकोरका चन्द्र (अर्थात् आनन्दजनक) और राक्षसकुलरूप पद्मसमूहका चन्द्र (अर्थात् विनाशक), तुमको प्रणाम करता हुं।

হে প্রভু রামচন্দ্র, তুমি ইক্ষ্বাকুবংশরূপ সুধাসিন্ধুর চন্দ্র (অর্থাৎ তাহাতে উৎপন্ন হইয়াছ), সীতার সুচঞ্চল নয়নরূপ চকোরের চন্দ্র (অর্থাৎ আনন্দজনক), এবং রাক্ষসকুলরূপ পদ্মসমূহের চন্দ্র (অর্থাৎ বিনাশক); তোমাকে প্রণাম করি। ১৫।

द्वितीयः सर्गः।

आसीन्नृपो दशरथोऽतिरथो महात्मा-
योध्यापतिर्व्वरमती रघुवंशहंसः।
योऽसौ प्रजाविरहितः सुहितः प्रजानां
पुत्रेष्टि-माहरदरं निजरिष्टिशान्त्यै ॥१॥

सम्भूतः सुरकार्य्यसाधनपरो रामो रमावल्लभः
कौसल्योदरमध्यगः स्वयमहो ब्रह्माण्डभाण्डोदरः।

१। अतिरथ (अर्थात् असंख्य शत्रुओंके साथ युद्ध करनेमें समर्थ), महात्मा, उत्तम बुद्धि सम्पन्न और रघुकुलश्रेष्ठ दशरथ नामका अयोध्याके एक राजा थे। वे प्रजाओंके हितसाधनमें तत्पर रहकर सन्तान न होनेपर अपना दुर्दैव शान्तिके लिये शीघ्र पुत्रेष्टि याग किये थे।

२। क्या आश्चर्य! जिनके उदररूप भाण्डमें ब्रह्माण्ड अवस्थान करता है, वे लक्ष्मीकान्त रामचन्द्रजी सुरगणोंके कार्य्य साधन करनेके लिये स्वयं कौशल्याजीके

অতিরথ (অর্থাৎ অসংখ্য বিপক্ষগণের সহিত যুদ্ধকরণে সমর্থ), মহাত্মা, উত্তমবুদ্ধিসম্পন্ন ও রঘুকুলশ্রেষ্ঠ দশরথ নামে অযোধ্যার রাজা ছিলেন। তিনি প্রজাদিগের হিতসাধনে তৎপর থাকিয়া, সন্তান না হওয়ায়, নিজ দুর্দৈবশান্তির নিমিত্ত শীঘ্র পুত্রেষ্টি-যাগ করিয়াছিলেন। ১।

कैकेयी सुषुवे सुखेन भरतं देवस्य तस्यांशतः,
शत्रुघ्नोऽप्यनु लक्ष्मणं समजनि, द्वौ तौ सुमित्रासुतौ ॥२॥
जातस्त्वजः सुरगुरोः शशिनश्च योगे
तुङ्गस्थिते विधिवशाद् ग्रहपञ्चके (१) च ।
पक्षे सिते शुभदिनेऽदितिभे (२) नवम्यां
चैत्रे वसन्ततिलके (३) तिलको रघूणाम् ॥३॥

उदरमें प्रवेश करके जन्म लिये थे। वे भगवान्के अंशसे कैकेयी सुखसे भरतजीको प्रसव किये थे और लक्ष्मण-जीके पीछे शत्रुघ्नजी भी जन्म लिये थे, उन दोनों सुमित्राजीके पुत्र।

३। वे जन्मविहीन भगवान्, विधाताका संयोग होनेसे और पांचठो ग्रह स्व स्व उच्चस्थानमें अवस्थान

কি আশ্চর্য্য! যাঁহার উদররূপ ভাণ্ডে ব্রহ্মাণ্ড অবস্থান করে, সেই লক্ষীকান্ত রামচন্দ্র সুরগণের কার্য্যসাধনার্থ স্বয়ং কৌশল্যার উদরে প্রবেশ করিয়া উৎপন্ন হইয়াছিলেন। সেই ভগবানেরই অংশে কৈকেয়ী সুখে ভরতকে প্রসব করিয়াছিলেন; এবং লক্ষ্মণের পর শত্রুঘ্নও জন্মিয়াছিলেন, তাঁহারা উভয়েই সুমিত্রার পুত্র।২।

---

(१) पञ्चसु ग्रहेषु रवि-मङ्गल-गुरु-शुक्र-शनैश्चरेषु तुङ्गस्थितेषु यथाक्रमं मेष-मकर-कर्कट-मीन-तुलाराशिस्थेषु ।

(२) अदितिदैवते पुनर्व्वसुनक्षत्रे ।

(३) वसन्तसमयस्य तिलकभूते। वसन्ततिलकमिति एतद्वृत्तनाम च, तल्लक्षणं यथा "ज्ञेयं वसन्ततिलकं त-भ-जा ज-गौ गः"।

पुरे प्रवृत्तोत्सव-मन्वगारं, दीनद्विजापादित-हेमभारम् ।
जगुस्तदोन्मोचितवन्दि तस्य सद्वन्दिनो जन्मदिनं प्रशस्य ॥४

गीतम् ।

(वसन्तरागेण यतितालेन च गेयम्)

जयति नृपतिसुत-जनिदिन-मद्य ।
स्फुटित-सकलविध· सुरभि-कुसुमचय-
सुरभीकृतदिक् सद्यः ॥ (ध्रु०) ॥५॥

करनेसे, वसन्तकालके तिलकस्वरूप चैत महीनाके शुक्ल-पक्षके नवमी और पुनर्वसु नक्षत्रके शुभदिनमें रघुवंशोंके श्रेष्ठ होकर जन्म लिये थे ।

४ । उनके जन्मदिनमें नगरके हरएक घरमें उत्सव हुआ था । दरिद्र और ब्राह्मणोंको राशि राशि सुवर्ण दिया गया था । उसी समय उत्कृष्ट स्तुति-पाठकगण उसी दिनका प्रशंसा करके गीत गाने लगे थे ।

সেই জন্মবিহীন ভগবান্ বিধাতার নির্ব্বন্ধে, বৃহস্পতি ও চন্দ্রের পরস্পর মিলন হইলে, এবং পাঁচটি গ্রহ স্ব স্ব উচ্চস্থানে অবস্থান করিলে, বসন্তকালের তিলকস্বরূপ চৈত্রমাসে শুক্লপক্ষে নবমী তিথিতে ও পুনর্ব্বসু নক্ষত্রে শুভদিনে রঘুবংশীয়দিগের শ্রেষ্ঠ হইয়া জন্মগ্রহণ করিয়াছিলেন। ৩।

তাঁহার জন্মদিনে নগরে প্রতিগৃহে উৎসব হইয়াছিল, দরিদ্র ও ব্রাহ্মণদিগকে রাশিরাশি সুবর্ণ দেওয়া হইয়াছিল, এবং বন্দী-দিগকে কারামুক্ত করা হইয়াছিল। সেই সময়ে উৎকৃষ্ট স্তুতিপাঠক-গণ সেই দিনের প্রশংসা করিয়া গান করিতে লাগিল। ৪।

प्रवहदमल-मृदु- मलय-समीरण-
पुलकित-सर्वशरीरम्।
सरसि विकस्वर- सरसिज-रजसा
रञ्जित-चञ्चल-नीरम् ॥६॥
सुमधुर-गुञ्जन- पराग-रञ्जित-
निपीतमधु-मधुपालि।
चूत-मुकुलचय- चर्व्वण-सुस्वर-
कोकिल-कुल-कल-शालि ॥७॥

५। आज राजपुत्रका जन्मदिन अति उत्कृष्ट भाव धारण किये है। सद्यप्रस्फुटित नानाविध वसन्तकालका पुष्पसमूहसे दिक् सकल सुवासित हुआ हैं।

६। निर्मल मृदु समीरण प्रवाहित होकर सर्व शरीर पुलकित कर रहा है, सरोवरका चञ्चल जल विकसित पद्मसमूहके रेणु द्वारा रञ्जित हुआ है।

७। मधुकरगण मधुपान करके, पुष्पपरागोंसे रञ्जित होकर सुमधुर गुञ्जन कर रहा हैं। कोकिल-कुल चूतमुकुलसमूह चर्वण करके सुस्वरकण्ठ होकर कलरव कर रहे हैं।

অদ্য রাজপুত্রের জন্মদিন অতি উৎকৃষ্ট ভাব ধারণ করিয়াছে। সদ্যঃপ্রস্ফুটিত নানাবিধ বসন্তকালীন পুষ্পসমূহে দিক্ সকল সুবাসিত হইয়াছে। ৫। নির্ম্মল মৃদু মলয়-সমীরণ প্রবাহিত হইয়া সর্ব্ব-শরীর পুলকিত করিতেছে। সরোবরে চঞ্চল জল, বিকসিত পদ্ম-

ফলভর-সন্নত-   তরুবর-সংহতি-
জনিত-পথিকজন-হর্ষম্।
নব-কিসলয়-দল-   ফুল্ল-লতাকুল-
বিরচিত-কুসুম-সুবর্ষম্ ।৮॥
নানাবিধ-ধন-   বিতরণ-মোচিত-
শতশত-দীন-বিষাদম্।
অবিরত বাদিত-   তূর্য্য-সমন্বিত-
মঙ্গল-শঙ্খ-নিনাদম্ ॥ ৯ ॥

৮। তরুগণ ফলোঁকে ভারসে নিম্ন হোকর পথিকোঁকে হর্ষ উত্‌পাদন কর রহে হৈঁ। কুসুমিত লতাকুল নবপল্লব সঞ্চালন করকে পুষ্পবৃষ্টি কর রহা হৈঁ।

৯। নানাবিধ ধনদান করকে শত শত দরিদ্রোঁকা দুঃখ মোচন হো রহা হৈ। অবিরত বাদ্য সকল বাদিত ঔর তত্‌সহ মাঙ্গল্য শঙ্খধ্বনি হো রহা হৈঁ।

সমূহের রেণু দ্বারা রঞ্জিত হইয়াছে। ৬। মধুকরগণ মধুপান করিয়া, পুষ্পরাগে রঞ্জিত হইয়া, সুমধুর গুঞ্জন করিতেছে। কোকিলকুল চূতমুকুল-সমূহ চর্ব্বণ করিয়া সুস্বরকণ্ঠ হইয়া কলরব করিতেছে। ৭। তরুগণ ফলভরে নত হইয়া পথিকদিগের হর্ষ উৎপাদন করিতেছে। ৮। নানাবিধ ধন দান করিয়া শতশত দরিদ্রগণের দুঃখ মোচন করা হইতেছে। অবিরত বাদ্য সকল বাদিত এবং তৎসহ মাঙ্গল্য শঙ্খধ্বনি হইতেছে। ৯।

नृत्यपरायण- वारवधूजन-
विवृत-सुचिरतर-भावम्।
बन्धन मोचित- वन्दी-जनगण-
सञ्जात-हर्ष-विरावम्॥१०॥
सुवसन-भूषण- लाभ-परितोषित-
सञ्चरदनुचरवर्गम्।
चित्र-पताका- सुकुसुम-दामभि-
रञ्चिततर-पुरमार्गम्॥११॥
सद्मनि सद्मनि पुरि पुरवासिभि-
राचरितोत्सव-कृत्यम्।

१०। वाराङ्गनागण मनोहर भाव प्रकाश करके नृत्य कर रही हैं। वन्दीगण बन्धनमुक्त होकर एक संग आनन्दध्वनि कर रहे हैं।

११। अनुचरवर्ग उत्तम वसनभूषण लाभ कर आनन्दसे इतस्ततः विचरण कर रहे हैं। राजपथ विचित्र पताका और उत्तम पुष्पमालासे सुशोभित हुआ है।

বারাঙ্গনাগণ মনোহর ভাব প্রকাশ করিয়া নৃত্য করিতেছে। বন্দীগণ বন্ধনমুক্ত হইয়া একসঙ্গে আনন্দধ্বনি করিতেছে। ১০। অনুচরবর্গ উত্তম-বসন-ভূষণ-লাভে অতিশয় তুষ্ট হইয়া ইতস্ততঃ বিচরণ করিতেছে। রাজপথ বিচিত্র পতাকা ও পুষ্পমালায় সুশোভিত

सुमधुर-भोजन- तर्पित-हर्षित-
शिशुगण-कृत-कमनृत्यम् ॥१२॥
कुमार-दर्शन- चलित समुत्सुक-
पुरन्ध्रि जन-मपतापम् ।
श्यामाचरण: द्विज इति वदते
मामपि सह नय पापम् ॥१३॥

पापश्वापदसङ्कुला-मविरलां कृत्स्नां पलाशाटवीं (१)
दग्धुं सूर्य्यकुलारणि-रुदभवद् रामाग्नि-रत्युल्वण: ।

१२। नगरके हरएक घरमें पुरवासीओंने उत्सव-कार्य्य कर रहे हैं। शिशुगण सुमिष्ट भोजनसे तृप्त और हृष्ट होकर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं।

१३। सकल सन्ताप विदूरित हुआ है और पुरस्त्रीगण उत्सुक होकर राजपुत्रको दर्शन करने चली हैं। द्विज श्यामाचरण कह रहा है यह पापिष्ठको भी संग कर ले चलो।

হইয়াছে। ১১। নগরে গৃহে গৃহে পুরবাসীরা উৎসবকার্য্য করিতেছে। শিশুগণ সুমিষ্ট-ভোজনে তৃপ্ত ও হৃষ্ট হইয়া সুন্দর নৃত্য করিতেছে। ১২। সকল সন্তাপ দূরীভূত হইয়াছে, এবং পুরন্ধ্রীগণ (গিন্নীরা) উৎসুক হইয়া রাজপুত্র-দর্শনে চলিয়াছে। দ্বিজ শ্যামাচরণ তাহাদিগকে বলিতেছে, এ পাপিষ্ঠকেও সঙ্গে করিয়া লইয়া যাও। ১৩।

---

(१) पलाशा: राक्षसा: अथच वृक्षविशेषा: ।

सोऽयं भाग्यसमीरणेरित इतो (१) हृत्कन्दरं दीपयन्
रूढ़ं दुर्म्मतिघासराशि-मधुना भस्मीक्रियान्मेऽचिरात् ॥१४॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां रामलीलायां
गीतिकाव्ये आविर्भावो नाम
द्वितीयः सर्गः ॥२॥

१४। अधर्म्मरूप श्वापदसे परिपूर्ण निविड़ राक्षस-रूप वनको निमेषमें दग्ध करनेके वास्ते, सूर्य्यवंशरूप अरणिकाष्ठसे अति प्रबल रामरूप अनल उत्पन्न हुआ है। वही अनल अभी भाग्यरूप पवनसे परिचालित होकर मेरे हृदयरूप गुहामें आकर उसका अन्धकार दूर करके, उसमें जो दुर्म्मतिरूप तृणराशि उत्पन्न हुआ है, उसको अति शीघ्र भस्म करे।

অধর্ম্মরূপ শ্বাপদে পরিপূর্ণ নিবিড় রাক্ষসরূপ বন নিঃশেষে দগ্ধ করিবার জন্য, সূর্য্যবংশরূপ অরণিকাষ্ঠ হইতে অতিপ্রবল রামরূপ অনল উৎপন্ন হইয়াছেন। সেই অনল এক্ষণে ভাগ্যরূপ পবনে পরিচালিত হইয়া, আমার হৃদয়রূপ গুহায় আসিয়া, উহার অন্ধকার দূর করিয়া, উহাতে যে দুর্ম্মতিরূপ ঘাসরাশি জন্মিয়াছে, তাহা অচিরে ভস্ম করুন। ১৪।

---

(१) प्राप्तः।

तृतीयः सर्गः।

उपनीतं ततो रामं विनीतं सहलक्ष्मणम्।
अनुनीतनृपो यज्ञं नीतवान् कुशिकात्मजः॥१॥

हत्वा यज्ञविघातिनीमतिबलां तां ताड़कां राक्षसीं
नीत्वा गौतमकामिनीं पतिकृताच्छापाद्विमुक्तिं तथा।
जानक्याश्च ततः स्वयंवरकथां श्रुत्वागमत् सानुजः
सोल्लासं मिथिलापुरीमनुसरन् कुच्योद्भवं भूसुरम्॥२॥

१। इसके पश्चात् रामको उपनयन और विद्याशिक्षा हो जानेसे कुशिकनन्दन विश्वामित्र राजा दशरथको अनुनय करके राम और लक्ष्मणको उनके यज्ञमें ले गये।

२। राम यज्ञविघ्नकारिणी अति बलशालिनी वह ताड़का राक्षसीको वधकर और गौतमपत्नी अहल्याको पतिप्रदत्त सापसे मुक्तिप्राप्त कर, जानकीजीकी स्वयंवर कथा सुन, राजर्षि विश्वामित्रके अनुगामी हो लक्ष्मणके साथ आनन्दसे मिथिला नगरमें गये।

তার পর রামের উপনয়ন ও বিদ্যাশিক্ষা হইলে, কুশিকনন্দন বিশ্বামিত্র, রাজা দশরথকে অনুনয় করিয়া, রাম ও লক্ষ্মণকে তাঁহার যজ্ঞে লইয়া গেলেন। ১।

রাম যজ্ঞবিঘ্নকারিণী অতি বলশালিনী সেই তাড়কা রাক্ষসীকে বধ করিয়া, এবং গোতমপত্নী অহল্যাকে পতিপ্রদত্ত শাপ হইতে

जनकनृपतिनास्मिन् सत्कृते रङ्गभूमौ
धृतवति हरचापं व्यर्थराजन्यवृन्दम्।
जनकदुहितुरेवं चित्तमुल्लासयन्ती
मधुरवचनमाली (१) मालिनी काचिदूचे॥ ३॥

——

३। जनक राजा यज्ञस्थलमें उनका समादर करके, क्षत्रियगण जिसमें अकृतकार्य्य हुये थे वही हरधनु उसने धारण किया, तव मालिनी अर्थात् मालाधारिणी कोइ सखी जनकतनयाका चित्त उल्लासित कर मधुर वचनसे इस् प्रकार कहने लगी।

মুক্তি পাওয়াইয়া, জানকীর স্বয়ংবরকথা শুনিয়া, রাজর্ষি বিশ্বা-মিত্রের অনুগামী হইয়া, লক্ষ্মণের সহিত উল্লাসে মিথিলানগরে গমন করিলেন। ২।

জনক রাজা রঙ্গস্থলে তাঁহার সমাদর করিলে, ক্ষত্রিয়গণ যাহাতে অকৃতকার্য্য হইয়াছে, সেই হরধনু তিনি ধারণ করিলেন; তখন মালিনী (অর্থাৎ মালাধারিণী) কোনও সখী জনকতনয়ার চিত্ত উল্লাসিত করিয়া মধুর বচনে এইরূপ বলিতে লাগিল। ৩।

---

(१) आली सखी। मालिनी मालाधारिणी। मालिनीति एतद्वृत्त-नाम च, तल्लक्षणं यथा "न-न-म-य-य-युतेयं मालिनी भोगि-लोकैः।"

गीतम् ।

(गुर्ज्जरीरागेण एकतालीतालेन च गेयम्)

अयि सखि पश्य (१) कोऽपि सुदृश्य
उदयति नवघन एषः ॥ (ध्रु०) ॥ ४ ॥
सुमसृण-मोहन- विमल-सुचिक्कण-
श्यामल-वरतनुभासः ।
ध्वनित-सभाङ्गन- गभीर-निस्वन-
जनित-हृदय शिखिलासः ॥ ५ ॥
शुभ-वनमाला भाति विशाला
तुलित-चलित-बकपाली ।

---

४ । हे सखि, देख, यह कैसा नवीन मेघ उदित हुआ ।

५ । इनका देहकान्ति अति मसृण, मनोहर, निर्म्मल, सुचिक्कण और श्यामवर्ण । गम्भीर शब्दसे सभा-प्राङ्गण प्रतिध्वनित हो रहा है, और हृदयरूप मयूर नृत्य कर उठ रहा है ।

হে সখি, দেখ, এ কেমন সুন্দর নবীন মেঘ উদিত হইল। ৪। ইহার সুন্দর দেহের কান্তি অত্যন্ত মসৃণ, মনোহর, নির্ম্মল, সুচিক্কণ ও শ্যামবর্ণ। ইহার গম্ভীর শব্দে সভার প্রাঙ্গণ প্রতিধ্বনিত হইতেছে

---

(१) अत्र पादान्तस्थयोर्गुरुत्वम् । एवं परत्रापि ।

अंस-विलम्बित- सुदीर्घ-चित्रित-
चारु-शरासनशाली ॥ ६ ॥
एष पयोधर उज्ज्वल-सुन्दर
आगमदिह वरपात्रम्।
त्वं सखि चपला सुवर्ण-विमला
मिलन-सुचित-मतिमात्रम्। ७ ॥
मरकत-भूषण- विजटित-काञ्चन-
सुसदृशमेष्यसि (१) शोभाम्।

६। विशाल सुन्दर वनमाला जो शोभा पा रहा है, उसके साथ वकपंक्तिका तुलना है। अंसदेशमें सुदीर्घ और चित्रित धनु भी शोभा पा रहा है।

७। यह पयोधर सुन्दर वेशमें योग्यपात्ररूपसे एहां उपस्थित हुआ है, तुम भी सखि सुवर्णसरीका निर्म्मलकान्तिशालिनी विद्युत् स्वरूपा, इसलिये अति योग्य मिलन होगा।

এবং হৃদয়রূপ ময়ূর নাচিয়া উঠিতেছে। ৫। বিশাল সুন্দর বন-মালা যে শোভা পাইতেছে, উহার সহিত উড্ডীয়মান বকপঙ্‌ক্তির তুলনা হয়। অংসদেশে সুদীর্ঘ এবং চিত্রিত সুন্দর ধনুও শোভা পাইতেছে। ৬। এই পয়োধর উজ্জ্বল সুন্দর বেশে উপযুক্ত পাত্র-রূপে এখানে উপস্থিত হইয়াছে, তুমিও সখি, সুবর্ণের ন্যায় নির্ম্মল-কান্তিশালিনী বিদ্যুৎ; সুতরাং অত্যন্ত উপযুক্ত মিলনই

---

(१) सुसदृशमिति छिवन्तस्य रूपम्।

लषित-विलोचन- सकल-सखीजन-
मानस-चातक-लोभाम् ॥ ८ ॥
कुञ्चित-कुन्तल- मानन-मण्डल-
मञ्जनि (१) शैवलकान्तम् ।
सुनील-नेत्रं मधुकर-मित्रं
खेलति तत्र नितान्तम् ॥ ६ ॥

८। मरकत मणि निर्म्मित अलङ्कारसे जड़ित काञ्चनसदृश शोभा धारण करेगा। समस्त सखियोंका चक्षु उत्सुक होकर रहा हैं, वह शोभा दर्शन करके उन्होंका मानसरूप चातकका लोभ उत्पन्न हो रहा है।

६। इनके मुखमण्डलमें कुञ्चित कुन्तल गिरकर शैवाल संयोगसे रमणीय पद्मसरीका शोभा हुआ है। उनमें नीलवर्ण नेत्र भ्रमरकासा नित्य खेल रहा है।

হইবে। ৭। মরকতমণি-নির্ম্মিত অলঙ্কারে জড়িত কাঞ্চনের সদৃশ শোভা ধারণ করিবে। সকল সখীদিগের চক্ষু উৎসুক হইয়া রহিয়াছে, সে শোভা-দর্শনে তাহাদের মানসরূপ চাতকের লোভ জন্মিতেছে। ৮। ইঁহার মুখমণ্ডলে কুঞ্চিত কুন্তল পতিত হওয়ায়, শৈবাল-সংযোগে রমণীয় পদ্মের ন্যায় শোভা হইয়াছে, তাহাতে নীলবর্ণ নেত্র ভ্রমরের ন্যায় নিয়ত খেলা করিতেছে। ৯।

---

(१) पद्मम्।

अनुकूलित-विधि- नैष्टम-गुणनिधि-

रुपहित इह यदि सत्यम्।

गुरु-पुरनाशन- कार्म्मुक-भञ्जन-

मतिशय दुष्कर-कृत्यम् ॥ १० ॥

स्मर हरमाशु स्मरहरमाशु-

तोष-मनिशमयि चित्ते।

न कुरु विषादं जनयतु मोदं

स हि शशलाञ्छनभृत्ते (१) ॥११॥

धर सखि धैर्य्यं बहुजनहार्य्यं

धनुरपि भङ्क्ष्यति वीरः।

१०। सत्यही विधि अनुकूल होकर ऐसा गुणनिधिको एहां भेज दिये हैं, पर सुकठिन हरधनुर्भङ्ग अति दुष्कर कार्य्य हो रहा है।

११। हे सखि, मनमें आशुतोष हरको शीघ्र स्मरण करो। विषस्न मत हो, वह शशाङ्कशेखर निश्चय तुमहारा आनन्दवर्द्धन करेंगे।

বাস্তবিকই বিধি অনুকূল হইয়া এরূপ গুণনিধিকে এখানে পাঠাইয়াছেন বটে, কিন্তু সুকঠিন হরধনুর্ভঙ্গ অত্যন্ত দুষ্কর কার্য্য হইয়া রহিয়াছে। ১০। হে সখি, মনে মনে স্মরহর আশুতোষ হরকে শীঘ্র স্মরণ কর। বিষণ্ণ হইও না, সেই শশাঙ্কশেখর নিশ্চয়ই তোমার আনন্দ বর্দ্ধন করিবেন। ১১।

---

(१) भृत्-ते इति पदच्छेदः।

श्यामाचरणक- गरिष्ठपातकं-
पर्वत-भङ्ग-सुधीरः ॥ १२ ॥

भङ्क्त्वा धनुर्वरमथो वरतामुपेतं
यस्तं तदानवरतं वरमागधैस्तम्।
शङ्खस्वने रघुवरं वरयाम्बभूवुः
साध्व्यः सुधानवरवाग्-वरपौरवध्वः ॥ १३ ॥

१२। हे सखि, धीरज धरो, यह धनु (जो ऐसा भारी है) बहुत् मनुष्य ढोकर लानेसे भी ये वीर पुरुष इसे तोड़ेंगे क्योंकि इन्होंने श्यामाचरणका गुरुतर पापरूप पर्वत भङ्ग करनेमें अद्भुत सामर्थ्य देखाये हैं।

१३। अनन्तर रघुवर जब धनुक तोड़कर जानकीजीका वर होगयें, तब उत्कृष्ट स्तुतिपाठकगण सतत उनका प्रशंसावाद करने लगें और पतिव्रता और सुधासा मधुरभाषिणी सुन्दरी पुरवधूगण शङ्खध्वनिके साथ उनको वरण किया।

হে সখি, ধৈর্য্য অবলম্বন কর; এই ধনু (এত গুরুতর যে) বহুজনে বহিয়া আনিয়া দিলেও, এই বীরপুরুষ ইহা ভঙ্গ করিবেন, কারণ ইনি শ্যামাচরণের গুরুতর পাপরূপ পর্ব্বতের ভঙ্গে বিলক্ষণ বিচক্ষণতা দেখাইয়াছেন। ১২।

অনন্তর রঘুবর যখন ধনুর্ভঙ্গ করিয়া জানকীর বর হইলেন, তখন উৎকৃষ্ট স্তুতিপাঠকেরা সতত তাঁহার প্রশংসাবাদ করিতে লাগিল, এবং পতিব্রতা ও সুধাসম-মধুর-ভাষিণী সুন্দরী পুরবধূরা শঙ্খধ্বনি-সহকারে তাঁহার বরণ করিল। ১৩।

भ्रातृभिः सहितो रामः कृत्वा परिणयं शुभम् ।
अयोध्यां गन्तुमारेभे पौरजानपदैर्वृतः ॥ १४ ॥
पथि सञ्जातरोषेण हरचापविमर्द्दनात् ।
सङ्गतो जामदग्न्येन रामो रामेण संयुगे ॥ १५ ॥
हृत्वा दिव्यगतिञ्च तस्य विनया-दव्यर्थदिव्येषुणा
तप्तुं तेन यियासुना भृगुवरेणालिङ्गितः सादरम् ।
नत्वा तं मुदितः परं परिजनैः सार्द्धं प्रविष्टः पुरीं
मातॄणा-मतनोन्मुदं नववधूचन्द्राननै-रुज्ज्वलैः ॥ १६ ॥

१४। रामचन्द्रजी भ्रातृगणोंके साथ शुभ परिणय-कार्य्य सम्पन्न करके पौर और जानपद वेष्टित होकर अयोध्यामें जाने लगे।

१५। हरधनु भग्न होनेपर क्रुपित जमदग्नि-तनय परशुरामके साथ रामचन्द्रजीसे रास्तेमें युद्ध हुआ था।

१६। परशुरामजी अनुनय करनेसे अव्यर्थ दिव्य वाणसे उनका दिव्य गति रोध करनेसे वेही भृगुराम तपस्या करनेके लिये गमनार्थ उद्योगी होकर सादरसे आलिङ्गन

রামচন্দ্র ভ্রাতৃগণের সহিত শুভ পরিণয়কার্য্য সম্পন্ন করিয়া, পৌর ও জানপদবর্গে পরিবৃত হইয়া অযোধ্যায় যাইতে লাগিলেন।১৪

হরধনুর্ভঙ্গে কুপিত জমদগ্নিতনয় পরশুরামের সহিত রামচন্দ্রের পথে যুদ্ধ ঘটিয়াছিল। ১৫।

পরশুরাম অনুনয় করায়, অব্যর্থ দিব্য বাণে তাঁহার দিব্যগতি রোধ করিলে, সেই ভৃগুরাম তপস্যার্থ গমনোদ্যত হইয়া তাঁহাকে

सीतासमागम-सुखोच्छ्वसितोरसोऽस्य
रामस्य पौरजनगीतगुणास्तवस्य।
भ्रातृत्रयेण सततानुगतस्य हार्द्दात्
वर्षाणि षड् द्विगुणितानि सुखं व्यतीयुः॥ १७॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां रामलीलायां
गीतिकाव्ये हरधनुर्भङ्गो नाम
तृतीयः सर्गः॥ ३॥

कियें। रामचन्द्रजी उनको प्रणाम करके अत्यन्त आनन्दित होकर परिजनवर्गोंके सहित नगरमें प्रवेश कियें और नववधूओंकी उज्ज्वल चन्द्रानन देखाकर मातृगणोंको प्रीति उत्पादन कियें।

१७। रामचन्द्रजीका हृदय सीतासमागम-सुखसे उच्छ्वासित हुआ, पौरजनोंने उनका गुणगान करने लगें और भ्रातृत्रय प्रणय वशतः सदा उनका अनुगत हुयें। इसी तौरसे उनका द्वादशवर्ष सुखसे कट गया।

সাদরে আলিঙ্গন করিলেন। রামও তাঁহাকে প্রণাম করিয়া, অত্যন্ত আনন্দিত হইয়া, পরিজনবর্গের সহিত নগরে প্রবেশ করিলেন, এবং নববধূগণের উজ্জ্বল চন্দ্রানন দেখাইয়া মাতৃগণের প্রীতি উৎপাদন করিলেন। ১৬।

রামচন্দ্রের হৃদয় সীতাসমাগম-সুখে উচ্ছ্বসিত হইল, পৌরজনে তাঁহার গুণগান করিতে লাগিল, এবং ভ্রাতৃত্রয় প্রণয়বশতঃ সতত তাঁহার অনুগত হইল। এইরূপে তাঁহার দ্বাদশ বৎসর সুখে কাটিয়া গেল। ১৭।

चतुर्थः सर्गः ।

अभिषेक्तुं ततो राम-मुद्युक्तं जगतीपतिम् ।
कैकेयी वरयामास वरौ पूर्व्वं प्रतिश्रुतौ ॥ १ ॥

एकेन रामस्य वनप्रवास-
मन्येन पुत्त्रस्य तथाभिषेकम् ।
श्रुत्वा स मर्म्मण्यतिघोर-सुक्तं
राजेन्द्रवज्राहतवद् (१) बभूव ॥ २ ॥

---

१ । पिछे राजा रामचन्द्रजीको यौवराज्यमें अभि-षिक्त करनेका उद्योग करनेपर कैकेयीने पूर्व्व प्रतिश्रुत दो वर प्रार्थना किया ।

२ । एक वरमें रामचन्द्रजीका वनवास और दुसरे वरमें अपना पुत्रका राज्याभिषेक प्रार्थना किया । राजा वह अति भयानक वाक्य श्रवण करके मर्म्ममें जैसा इन्द्र-वज्रसे आघात पाये ।

পরে রাজা রামকে যৌবরাজ্যে অভিষিক্ত করিতে উদ্যত হইলে, কৈকেয়ী পূর্ব্বপ্রতিশ্রুত দুইটি বর প্রার্থনা করিলেন। ১।

একটি বরে রামের বনবাস এবং অন্য বরে নিজ পুত্রের রাজ্যা-ভিষেক করিতে বলিলেন। রাজা সেই অতি ভয়ঙ্কর বাক্য শুনিয়া মর্ম্মস্থলে যেন ইন্দ্রবজ্রে * আহত হইলেন। ২।

---

(१) इन्द्रवज्रेति एतद्वृत्तनाम च, तल्लक्षणं यथा "स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ ज-गौ गः ।"

* ইহার শ্লোকটিও 'ইন্দ্রবজ্রা' ছন্দে রচিত।

ततो विमातुर्वचनेन रामः
कर्त्तुं महात्मा पितृसत्यरक्षाम्।
सुलक्षणो लक्ष्मण-जानकीभ्यां
ययावरण्यं मुनिवेशधारी ॥ ३ ॥

निष्क्रामति पुरात्तस्मिन् वनवासाय दीक्षिते।
विलेपुरेवं दुःखार्त्ताः पौरजानपदास्तदा ॥ ४ ॥

गीतम्।

(मालवरागेण यतितालेन च गेयम्)

अहह किमिदमुपागतम्।
विना घन-मशनिपातवत् ॥ (ध्रु०) ॥ ५ ॥

३। अनन्तर सुलक्षणसम्पन्न महात्मा राम विमाताकी वाक्यसे पिताकी सत्यरक्षाके लिये मुनिवेश धारण-पूर्ब्बक लक्ष्मण और जानकीजीको साथ लेकर वनमें गये।

४। वह वनवासके लिये नियमावलम्बी होकर गृहसे जब निकल गये, तब पौर और जानपदवर्ग दुःखित होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे।

অনন্তর সুলক্ষণসম্পন্ন মহাত্মা রাম বিমাতার কথায় পিতার সত্যরক্ষা করিবার জন্য মুনিবেশ ধারণপূর্ব্বক লক্ষ্মণ ও জানকীর সহিত বনে গমন করিলেন। ৩।

তিনি বনবাসার্থ নিয়মাবলম্বী হইয়া গৃহ হইতে যখন নির্গত হন, তখন পৌর ও জানপদবর্গ দুঃখিত হইয়া এইরূপ বিলাপ করিতে লাগিল। ৪।

केकयीप्रबञ्चित- नरपतिनिदेशने (१)।
सकलमसुनोज्झितं वनगमनकारणे ॥ ६ ॥
तरुणवयसापि यदि धृतमिह मुनिव्रतम् ।
वयमपि याम तदा वनमेव हि द्रुतम् ॥ ७ ॥
किं धनेन जनेन गृहेण च निश्चितम् ।
सकलमपि निष्फलं राघव-विनाकृतम् ॥ ८ ॥

५। हाय ! विना मेघसे वज्रपातसदृश यह क्या हुआ ।

६। राजा कैकेयीजीके वचनसे प्रतारित होकर आदेश करनेपर इन्होंने वनगमनके लिये सब छोड़ दिये ।

७। इन्होंने यदि यौवनकालमेंही मुनिव्रत अवलम्बन किया, तब हमलोग भी अभी वनको चलें चलो ।

८। धन जन और गृहसे भी कुछ प्रयोजन नहीं। राम विना सब वृथा है ।

হায়! বিনা মেঘে বজ্রপাতের ন্যায় এ কি ঘটিল। ৫। রাজা কেকয়ীর বাক্যে প্রতারিত হইয়া আদেশ করায়, ইনি বনগমনের জন্য সমস্তই পরিত্যাগ করিলেন। ৬। ইনি যদি এই যৌবনকালেই মুনিব্রত অবলম্বন করিলেন, তবে আমরাও এখনই বনে যাই চল। ৭। ধন, জন ও গৃহে নিশ্চয়ই কোনও প্রয়োজন

---

(१) सतीति शेषः ।

भवतु पुरमेतदिह　　गहनतमकाननम् ।
विचरदतिभीषण-　　श्वापद-पवनाशनम् ॥ ९ ॥
प्रियसुतशोकवशा-　　दधिगतदिवि राजनि ।
भरत इहास्तु नृपो　　हिंसकपशुधामनि ॥ १० ॥
कृतकतिपुण्यचयो　　भवति खलु लक्ष्मणः ।
अनुसरतीममवि-　　गणितफलभक्षणः ॥ ११ ॥
जनकदुहितेयमपि　　युवतिकुलभूषणम् ।
जगति विहितं यया　　पतिव्रतलक्षणम् ॥ १२ ॥

---

९ । एहां इस नगर वन होजावे, इसमें भयङ्कर श्वापद और सर्पसमूह विचरण करें ।

१० । प्रियपुत्र रामचन्द्रके शोकसे राजाका स्वर्ग-प्राप्ति होनेसे वही हिंस्रजन्तुओंकी आवासभूमि एही स्थानमें भरत राजा होवे ।

११ । लक्ष्मण निश्चय करके कितना पुण्य किया है । वहीसे जो वनमें फल भक्षण करके रहना होगा, इसको कुछ भी नहीं शोचकर इनके सङ्ग चले जाते हैं ।

१२ । जानकीजी भी सब रमणीओंका भूषण-

নাই। রাম বিনা সকলই বিফল। ৮। এখানে এই নগর নিবিড় বন হইয়া যাউক। ইহাতে ভয়ঙ্কর শ্বাপদ ও সর্প সকল বিচরণ করুক। ৯। প্রিয়পুত্র রামচন্দ্রের শোকে রাজা স্বর্গলাভ করিলে, সেই হিংস্র পশুদিগের আবাসভূমি এই স্থানে ভরত রাজা হউক। ১০। লক্ষ্মণ নিশ্চয়ই কত পুণ্য করিয়াছেন। তাহাতেই, বনে ফল ভক্ষণ করিয়া যে থাকিতে হইবে, তাহা গ্রাহ্য না করিয়া,

वयमधिगम्य वनं कृतवसतिबन्धनाः।
सुखमुपवसाम हे- ऽपचितरघुनन्दनाः॥ १३॥
अपि करवाम सदा गीतमनु (१) नर्त्तनम्।
श्रीश्यामचरणकवि(२)- दुरितपरिकर्त्तनम्॥ १४॥

कमल-कोमल-चारुपदा शुभा-
नधिगतारुणभानु-मुखोड़ुपा (३)।

स्वरूप हैं। क्योंकि उन्होंने जगतमें पतिव्रताधर्म्मको प्रचार किया है।

१३। हमलोग वनमें जाकर घर बनाकर और रामचन्द्रजीका सेवा करके उनके साथ वास करें चलो।

१४। और भी सर्व्वदा नृत्य सहकारसे गान गावे, जिससे श्यामाचरण कविका पाप नाश होवे।

ইঁহার অনুগমন করিতেছেন। ১১। জানকীও সকল রমণীদিগের ভূষণস্বরূপ। কারণ, ইনি জগতে পতিব্রতা-ধর্ম্ম প্রচার করিলেন। ১২। আমরাও বনে গিয়া গৃহ নির্ম্মাণ করিয়া এবং রামচন্দ্রের সেবা করিয়া, তাঁহার নিকটে সুখে বাস করিগে চল। ১৩। আরও, সর্ব্বদা নৃত্যসহকারে গান করিব, যাহাতে শ্যামাচরণ কবির পাপনাশ হইবে। ১৪।

(१) अनुरत्र सहार्थे।

(२) "ङ्यापी संज्ञाछन्दसीर्बहुलम्" इति ह्रस्वः।

(३) गगनचन्द्रः खलु सूर्य्यकिरणमधिगच्छति, अस्या मुखचन्द्रस्तु अनधिगतसूर्य्यकिरण इति अधिककोमलता सूचिता।

अनुचिता पथि नित्यसुखोचिता
द्रुतविलम्बित-मायत (१) मैथिली ॥ १५ ॥
इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां रामलीलायां
गीतिकाव्ये निर्व्वासनं नाम
चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

१५। जिनका पदयुगल कमलकासा कोमल है, जिनका मुखचन्द्रमें कभी सूर्य्यकिरण नहीं लगा है, जिनका रास्तेमें चलना अभ्यास नही है और जो नियत सुखभोग किये हैं, वही सुन्दरी जानकीजी द्रुतविलम्बित (अर्थात् कभी द्रुत और कभी विलम्बसे) गमन करने लगी।

যাঁহার সুন্দর পদযুগল কমলের ন্যায় কোমল, যাঁহার মুখচন্দ্রে কখনও সূর্য্যকিরণ লাগে নাই, পথে চলা যাঁহার অভ্যাস নাই এবং যিনি নিয়ত সুখভোগই করিয়াছেন, সেই সুন্দরী সীতা দ্রুতবিলম্বিত * (অর্থাৎ কখনও দ্রুত কখনও বা বিলম্বে) গমন করিতে লাগিলেন। ১৫।

---

(१) कदा वा द्रुतं कदा वा विलम्बितम् आयत अगच्छत्। द्रुतविलम्बितमिति एतद्वृत्तनाम च, तल्लक्षणं यथा "द्रुतविलम्बितमाह न-भौ भ-रौ।"

* ইহার শ্লোকটিও 'দ্রুতবিলম্বিত' ছন্দে রচিত।

पञ्चम: सर्ग: ।

निवर्त्त्य राघव: पौरां-श्चान्यान् मधुरया गिरा ।
शृङ्गवेरपुरं रम्यं प्रविवेश महाद्युति: ॥ १ ॥
निषादपतिना तत्र गुहेन परमाद्दत: ।
विदधे सख्यमाधाय वसतिं वसतिन्तु (१) ताम् ॥२॥
रामस्य परिचर्य्यायै तस्य सानुचरस्य स: ।
आदिदेश निषादेशो गुह: स्वपरिचारकान् ॥ ३ ॥

१। महाद्युति रामचन्द्रजी पौर और अन्यान्य जनपदवासीओंको मधुर सम्भाषण करके घुमायकर रमणीय शृङ्गवेर-पुरमें प्रवेश कियें ।

२। निषादपति गुह परम समादर करनेसे, उनके साथ मित्रता करके वही रातको वहां वास कियें ।

३। वही निषादपति गुह रामचन्द्रजीको और उनके अनुचरवर्गोंका परिचर्य्याकेवास्ते अपना अनुचरोंको आदेश कियें ।

মহাদ্যুতি রামচন্দ্র পৌর ও অন্যান্য জনপদবাসীদিগকে মধুর সম্ভাষণে ফিরাইয়া দিয়া, রমণীয় শৃঙ্গবের-পুরে প্রবেশ করিলেন।১।

নিষাদপতি গুহ পরম সমাদর করায়, তাহার সহিত মিত্রতা করিয়া সে রাত্রি সেখানে বাস করিলেন। ২।

---

(१) रात्रिम् ।

ते राघवस्वागत-जातहर्षा-
स्तस्योपचारं (१) बलवच्चिकीर्षाः।
आचख्यु-रन्योन्य-मभीक्ष्ण-मीर्षा-
मुत्सृज्य सम्पन्न-मनःप्रकर्षाः॥ ४॥

गीतम्।

(देशरागेण एकतालीतालेन च गेयम्)

सत्वरं चल चल हे काननम्॥ (ध्रु०)॥५॥

४। ये लोग रामचन्द्रजीका शुभागमनसे हर्षित और उनके परिचर्य्या करने अत्यन्त इच्छुक होकर, मनमें उत्कर्ष लाभ होनेसे ईर्षा परित्यागपूर्व्वक परस्पर वार वार इसीतरहसे बोलने लगे।

५। चलो जल्दी वनमें जांय।

সেই নিষাদপতি গুহ রামচন্দ্রের ও তাঁহার অনুচরদিগের পরি-চর্য্যা করিবার জন্য নিজ পরিচারকদিগকে আদেশ করিল। ৩।

তাহারা রামচন্দ্রের শুভাগমনে হর্ষিত ও তাঁহার পরিচর্য্যা-করণে নিতান্ত ইচ্ছুক হইয়া, মনের উৎকর্ষলাভ হওয়ায়, ঈর্ষা পরিত্যাগপূর্ব্বক পরস্পর পুনঃপুনঃ এইরূপ বলিতে লাগিল। ৪।

চল হে শীঘ্র বনে যাই। ৫।

---

(१) सत्कारं।

उपनय इह (१) नृप- तनयनिमित्तम् ।
सरस-सुरस-फल- मभिरत चित्तम् ॥ ६ ॥
तरुण-हरिण-शश- सुललित-मांसम् ।
बहु-परिमित-मति- भर-नमितांसम् ॥७॥
शिशिर-विमलतर- सुरधुनि-नीरम् ।
पान-जनित-सुख- सर्व-शरीरम् ।८॥
विकसित बहुविध- सुकुसुम-भारम् ।
परमसुरभि-मभि- मत-मतिसारम् ॥९॥

६। राजपुत्रके लिये चित्तके प्रलोभजनक सरस सुमिष्ट फल एहां ले आवें।

७। नधर हरिण और शशकका सुललित मांस बहु परिमाणसे लावेंगे, जिसका भारसे हमलोगोंका स्कन्ध नत हो जायगा।

८। शीतल और सुनिर्म्मल गङ्गाजल लावेंगे, जिसको पान करनेसे सर्वशरीरमें सुखका सञ्चार होता है।

রাজপুত্রের জন্য চিত্তের প্রলোভজনক সরস সুমিষ্ট ফল এখানে লইয়া আসি। ৬। নধর হরিণ ও শশকের সুললিত মাংস বহুপরিমাণে আনিব, যাহার ভারে আমাদের স্কন্ধ নত হইয়া পড়িবে। ৭। শীতল ও সুনির্ম্মল গঙ্গাজল আনিব, যাহা পান করিলে সর্ব্বশরীরে

---

(१) उपनयै-इह इति छेदः।

तरुकिसलयदल- मतिरमणीयम्।
तदपि बहुलतर- मुपनयनीयम्॥१०॥
चल चल लघु लघु न कुरु विरामम्।
परिचरिता (१) प्रभु- रिह खलु रामम्॥११॥
तिष्ठत केचन नन्विह गेहे।
वीजयतासक्त- दिममपि देहे॥१२॥
रचयत केचन शुभ-शयनीयम्।
स्वप्स्यति सुखमय- मयमपि (२) चेयम्।१३॥

९। अतिशय सुगन्धि, अति उत्कृष्ट, मनोहर, नानाविध प्रस्फुटित पुष्प अढेर लावेंगे।

१०। अति रमणीय जो वृक्षका नवपल्लव, वह भी बहु परिमाणसे लाना होगा।

११। जल्दी चलो, जल्दी चलो, विलम्ब मत करो। हमलोगोंका प्रभु आज रामचन्द्रजीके सेवा करेंगे।

१२। अय! कोइ कोइ इस घरमें रहो और इनका देहमें निरन्तर व्यजन करो।

সুখসঞ্চার হয়।৮। অতিশয় সুগন্ধি, অতি উৎকৃষ্ট, মনোহর, নানাবিধ প্রস্ফুটিত পুষ্প রাশিরাশি আনিব। ৯। তরুগণের অতিরমণীয় যে নবপল্লব, তাহাও বহুপরিমাণে আনিতে হইবে। ১০। শীঘ্র চল, শীঘ্র চল; বিলম্ব করিও না। আমাদের প্রভু আজি রামচন্দ্রের সেবা করিবেন। ১১। ওহে, কেহ কেহ এই গৃহে থাক এবং ইঁহার

---

(१) सेविष्यते।
(२) अयं रामः, अयमपि लक्ष्मणः, इयञ्च जानकी।

ज्वलयत दिशि दिशि	बहु पशुमेदम्।
जनित-निविड़तर-	तिमिर-विभेदम्॥ १४॥
पल्लव-वृत-कटि	धृत-वनमालम्।
नृत्यत गायत	करतल-तालम्॥ १५॥
सानुज-सवनित-	रघुकुल-रत्नम्।
प्रभुसखमिममिह	धिनुत सयत्नम्॥ १६॥

१३। कोइ सुन्दर शय्या रचना करो। एही (रामचन्द्रजी) एही (लक्ष्मणजी) और एही (जानकीजी) हैं सुखसे शयन करेंगे।

१४। दिक दिकमें बहु परिमाणसे पशुमेद जलाओ, निविड़ अन्धकार नाश होजावे।

१५। कटिदेश पल्लवमें आवृत करके और वन-पुष्पका माला पहनकर नृत्य करो और गान करो।

१६। भ्राता और वनिताके साथ हमलोगोंका प्रभुका सखा रामचन्द्रजीको तुमलोग सयत्नसे प्रीत करते रहो।

দেহে নিরন্তর ব্যজন কর। ১২। কেহ সুন্দর শয্যা রচনা কর। ইনি (রাম), ইনি (লক্ষ্মণ) এবং ইনি (সীতা) সুখে শয়ন করিবেন। ১৩। দিকে দিকে বহু পশুমেদ প্রজ্বলিত কর, যাহাতে নিবিড় অন্ধকার বিনাশ হইবে। ১৪। কটিদেশ পল্লবে আবৃত করিয়া এবং বনফুলের মালা পরিয়া করতালি দিয়া নৃত্য কর ও গান কর। ১৫। ভ্রাতা ও বনিতার সহিত, আমাদের প্রভুর সখা এই রামচন্দ্রকে তোমরা এখানে সযত্নে প্রীত করিতে থাক। ১৬।

सदयति स हि यदि भुवन-विजेता।
श्याम-शमनदर- मर-मपनेता ॥ १७ ॥

नीचेनापि श्वपचपतिना यस्तु सख्येन बद्ध
आविश्चक्रे स्वमिह भगवान् भक्तवात्सल्यमेवम्।
तत्पादाब्जे विहरतु विहायान्यदीयं रसं मे
चेतोभृङ्गस्तृषितरभसेनामृतास्वादहेतोः ॥ १८ ॥
इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां रामलीलायां
गीतिकाव्ये गुहसमागमो नाम
पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

१७। वही भुवनविजयी अगर सदय होवे, तब श्यामाचरणका शमनभय शीघ्र दूर करेंगे।

१८। जो भगवान् अति निकृष्ट निषादपतिके साथ सख्यसूत्रमें आबद्ध होकर इस तरहसे निजका भक्त-वत्सलता प्रकाश करते हैं, हमारा मनरूप भृङ्ग तृष्णाका वेगमें अन्य रस परित्याग करके अमृतरस आस्वादन करनेकेवास्ते उनका पादपद्ममें विहार करे।

সেই ভুবনবিজয়ী যদি সদয় হন, তাহা হইলে শ্যামাচরণের শমনভয় শীঘ্র দূর করিবেন। ১৭।

যে ভগবান্ অতিনিকৃষ্ট নিষাদপতির সহিত সখ্যসূত্রে আবদ্ধ হইয়া এইরূপে নিজের ভক্তবৎসলতা প্রকাশ করিয়াছেন, আমার মনরূপ ভৃঙ্গ তৃষ্ণার বেগে, অন্য রস পরিত্যাগ করিয়া, অমৃতরস আস্বাদন করিবার জন্য তাঁহার পাদপদ্মে বিহার করুক। ১৮।

षष्ठः सर्गः ।

प्रगे भागीरथीं पुण्या-मभिवन्द्य कृताञ्जलिः ।
उत्तीर्य्य राघवो नावा प्राविशद्दण्डकावनम् ॥ १ ॥
तत्राश्रमान् महर्षीणां पवित्रान् चारुदर्शनान् ।
दृष्ट्वा हृष्टाऽभवत् सीता विनीता चानता ततः ॥२॥
तालतयै-रन्वयितं नृत्यभरं गीतपरम् ।
आद्दत स्म रम्यतरं माणवकाक्रीड़मलम् (१) ॥३॥

१। रामचन्द्रजी प्रातःकालमें कृताञ्जलि होकर पवित्र भागीरथीजीको प्रणामकर नावसे पार होकर दण्डकारण्यमें प्रवेश कियें।

२। वहां जानकीजी पवित्र और सुन्दर महर्षि-लोगोंके आश्रम सब देखकर आनन्दित हुयें और उसके पीछे विनीत होकर प्रणाम कियें।

রামচন্দ্র প্রাতঃকালে কৃতাঞ্জলি হইয়া পবিত্রা ভাগীরথীকে প্রণাম করিয়া, নৌকা দ্বারা পার হইয়া, দণ্ডকারণ্যে প্রবেশ করিলেন। ১।

তথায় সীতা পবিত্র ও সুন্দর মহর্ষিদিগের আশ্রম সকল দেখিয়া আনন্দিত হইলেন, এবং তার পর বিনীত হইয়া প্রণাম করিলেন।২

---

(१) माणवकानां मुनिकुमारकाणाम् आक्रीड़ं समन्तात् खेलनम्। माणकमिति माणवकाक्रीड़मिति वा एतद्वृत्तनाम च, तथाच "भात् त-ल-गा माणवकम्।" अपिच श्रुतबोधे "आदिगतं तुर्य्यगतं पञ्चमकं चान्तगतम्। स्याद्गुरु चेत् संकथितं माणवकाक्रीड़मिदम्।"

ईक्षाञ्चक्रेऽप्यनिमिषनयनं
मन्दं मन्दं प्रचरितपवनम्।
फुल्लन्मल्ली-कुसुम-समुदितं
कुञ्जं गुञ्जद्भ्रमरविलसितम् (१) ॥४॥

३। वे ताल-लयसमन्वित, नृत्य और गीतयुक्त, रम-णीय माणवकाक्रीड़ (अर्थात् मुनिकुमार लोगोंकी खेला) पर्य्याप्तरूपसे आदरपूर्व्वक देखने लगें।

४। वे अनिमिष नयनसे कुञ्जके तरफ ताक रहि थीं, वहां मन्द मन्द वायु वह रहा था, प्रफुल्ल मल्लिका-पुष्पका गन्ध उठ रहा था और गुञ्जनकारी भ्रमरविलसित (अर्थात् भ्रमर लोगोंका क्रीड़ा) हो रहा था।

তিনি তাল-লয়সমন্বিত, নৃত্য ও গীতযুক্ত, রমণীয় মাণবকাক্রীড় * (অর্থাৎ মুনিকুমারদিগের ক্রীড়া) পর্য্যাপ্তরূপে আদরপূর্ব্বক দেখিতে লাগিলেন। ৩।

তিনি অনিমিষ নয়নে কুঞ্জের দিকে চাহিয়া রহিলেন; তথায় মন্দ মন্দ বায়ু বহিতেছিল, প্রফুল্ল মল্লিকাপুষ্পের গন্ধ উঠিতেছিল এবং গুঞ্জনকারি-ভ্রমর-বিলসিত † (অর্থাৎ ভ্রমরদিগের ক্রীড়া) হইতেছিল। ৪।

---

(१) भ्रमरविलसितमिति एतद्वृत्तनाम च, तथाच "मी गी नी गी भ्रमर-विलसितम्।"

* ইহার শ্লোকটিও 'মাণবকাক্রীড়' ছন্দে বিরচিত।

† ইহার শ্লোকটিও 'ভ্রমরবিলসিত' ছন্দে বিরচিত।

संकूजत्-कलकण्ठ-कोकिलकुलं कुञ्जान्तरं रञ्जितं
सर्वर्त्तु प्रसवानता-नतिततान् रम्यान् धरित्रीरुहान्।
यश्चान्या हरिणैः समञ्च सुषमं शार्द्दूलविक्रीड़ितं (१)
जानक्या हृदये बभूव सहसा जातो (२) महान् विस्मयः ॥५॥
दृष्ट्वोभयेन (३) नयनेन महर्षयस्तं
रामं रघूत्तम-मुपेत-मपेतकल्याः।

५। सुरञ्जित कुञ्जके मध्यमें कलकण्ठ कोयेल लोगों रव करती है, विशाल वृक्षगण सब ऋतुका फल-पुष्पके भारसे नत होकर रमणीय हो रहा है, और हरिणोंके साथ सुन्दर शार्द्दूलविक्रीड़ित (अर्थात् व्याघ्र-लोगोंके क्रीड़ा) होता है, देखकर जानकीजीके हृदयमें तत्क्षणात् अतिशय विस्मय उत्पन्न हुआ।

সুরঞ্জিত কুঞ্জমধ্যে কলকণ্ঠ কোকিল সকল রব করিতেছে, বিশাল বৃক্ষ সকল সমস্ত ঋতুর ফল-পুষ্প-ভরে নত হইয়া রমণীয় হইয়া রহিয়াছে, এবং হরিণদিগের সহিত সুন্দর শার্দ্দূলবিক্রীড়িত * (অর্থাৎ ব্যাঘ্রদিগের ক্রীড়া) হইতেছে, দেখিয়া জানকীর হৃদয়ে তৎক্ষণাৎ অতিশয় বিস্ময় উৎপন্ন হইল। ৫।

---

(१) शार्दूलविक्रीड़ितमिति एतच्छन्नाम च, तथाच "सूर्य्याश्वैर्यदि मः स-जौ स-त-त-गाः शार्दूलविक्रीड़ितम्।"

(२) जातो बभूव इत्यन्वयः।

(३) उभयेन नयनेन लौकिकचक्षुषा दिव्यचक्षुषा च।

* ইহার শ্লোকটিও 'শার্দ্দূলবিক্রীড়িত' ছন্দে বিরচিত।

अर्घ्यै-रनर्घचरितं परितः समेता
आनञ्चु-रञ्चिततमाः पुलकप्ररोहैः ॥६॥
नेत्रे निमील्य हृदयाम्बुजकर्णिकायां
ध्यानावगम्य-मधिगम्य महःस्वरूपम्।
बद्धाञ्जलिं स्तुतिपराः प्रमदाप्लुताङ्गा
भक्त्या सगद्गद-मिदं जगदुर्मुनीन्द्राः ॥ ७ ॥

६। महर्षिलोगों दोनों आंखसे (अर्थात् लौकिक आंखसे और दिव्य आंखसे) वह्ही रघुवर रामचन्द्रजीको उपस्थित देखकर, समस्त कार्य्य परित्याग करके, पुलकोद्गममें सुशोभित होकर, चारों ओरसे मिलकर उदारचरित्र रामचन्द्रजीको अर्च्चना कियें।

७। मुनीन्द्रगणों नेत्रद्वय निमीलित करके हृद्-पद्मके भितर वह्ही ध्यानगम्य तेजःस्वरूप परंब्रह्मको जाकर अञ्जलिबन्धनपूर्व्वक, स्तुतिपरायण और आनन्द-रससे अभिषिक्त देह होकर भक्ति-गदगदस्वरसे इस तरह कहने लगें।

মহর্ষিরা উভয় চক্ষে (অর্থাৎ লৌকিক চক্ষে ও দিব্য চক্ষে) সেই রঘুবর রামচন্দ্রকে উপস্থিত দেখিয়া, সকল কার্য্য পরিত্যাগ করিয়া, পুলকোদগমে সুশোভিত হইয়া, চতুর্দ্দিকে মিলিয়া, উদার-চরিত্র রামচন্দ্রকে অর্চ্চনা করিলেন। ৬।

মুনীন্দ্রগণ নেত্রদ্বয় নিমীলিত করিয়া, হৃৎপদ্মমধ্যে সেই ধ্যান-

गीतम् ।

(गुर्ज्जरीरागेण यतितालेन च गेयम्)

नारायण मम मन-उपहारम् ।
धर धर हे कुरु तत्र विहारम् ॥ (ध्रु०) ॥८॥
त्वं विधिरीश- स्त्वं हि सुरपति-
स्त्वं यम-वरुण-कुवेराः ।
त्वं रविरिन्दु- स्त्वं क्षितिरनल-
स्त्वं जल-गगन-समीराः ॥ ९ ॥
त्वं सकलं जग- दपि च तदन्य-
स्तव महिमा न हि वेद्यः ।

८। हे नारायण, मेरा मनरूप उपहार ग्रहण करो और उसमें विहार करो।

९। तुम् ब्रह्मा, तुम् शिव, तुम् इन्द्र, तुम् यम, वरुण और कुवेर। तुम् सूर्य्य और चन्द्र, तुम् क्षिति और अग्नि, तुम् जल, आकाश और वायु।

গম্য তেজঃস্বরূপ পরমব্রহ্মকে পাইয়া, অঞ্জলিবন্ধনপূর্ব্বক, স্তুতি-পরায়ণ ও আনন্দরসে অভিষিক্ত-দেহ হইয়া ভক্তি-গদ্গদস্বরে এইরূপ বলিতে লাগিলেন। ৭।

হে নারায়ণ, আমার মনরূপ উপহার গ্রহণ কর এবং তাহাতে বিহার কর। ৮। তুমি ব্রহ্মা, তুমি শিব, তুমি ইন্দ্র; তুমি যম, বরুণ ও কুবের। তুমি সূর্য্য ও চন্দ্র; তুমি ক্ষিতি ও অগ্নি; তুমি

শ্রুতিরপি যস্মিন্ সংশয়বিধুরা
স কিমুত পরপরিমেয়ঃ ॥ ১০ ॥
কতি-কতি-মুনিভিঃ কতি-জননেষ্বপি
কতিবিধতপ ইহ তপ্তম্ ।
অনশনশোষিত- বপুরনুপাধি (১) তু
ন হি বত তব পদমাপ্তম্ ॥ ১১ ॥

১০। তুম্ সমস্ত জগত্ অথচ বহ্হী জগতসে ভিন্ন হো, তুম্হারা মহিমা জানা নহী জাতা হৈ, বেদ ভী জিসকা বর্ণনামেঁ সংশয়াকুল হোতা হৈ, উস্‌কো ক্যা দুসরেনে পরিচ্ছেদ কর সক্তা হৈ।

১১। যহ্হী জগতমেঁ কিতনা কিতনা মুনি কিতনা কিতনা জন্ম তক অনাহারসে শরীর শুষ্ককর কিতনা প্রকার তপস্যা কিয়ে হৈঁ, কিন্তু হায়! তুম্হারা বহ্হী নির্ব্বিশেষণ পদ (অর্থাৎ পরমব্রহ্মপদ) লাভ নহী কর সক্তে হৈঁ।

জল, আকাশ ও বায়ু। ৯। তুমি সমস্ত জগৎ, অথচ সেই জগৎ হইতে ভিন্ন; তোমার মহিমা জানা যায় না। বেদও যাহার বর্ণনায় সংশয়াকুল হন, তাহা কি অপরে পরিচ্ছেদ করিতে পারে? ।১০। এই জগতে কত কত মুনি কত কত জন্মে অনাহারে শরীর শুষ্ক করিয়া কতপ্রকার তপস্যা করিয়াছেন, কিন্তু হায়! তোমার সেই নির্ব্বিশেষণ পদ (অর্থাৎ পরমব্রহ্মপদ) লাভ করিতে

---

(১) নির্বিশেষণম্।

कति कति विश्वा- न्यनन्त तव हे
श्रयन्ति तनुरुह-कूपम् ।
अजोऽपि नित्यो जगदुपकृत्यै
दधासि कतिविधरूपम् ॥ १२ ॥
लय-जलराशौ मीनतनूधर
धरसि (१) हि वेदमुदारम् ।
विपुल-कठिनतर- कामठशरीरो
वहसि धरणिमनुवारम् ॥ १२ ॥

१२। हे अनन्त, कितना कितना विश्व तुम्हारा एक एक रोमकूपमें आश्रय करके रहता है। तुम जन्मविहीन और नित्य हो करके भी जगतके उपकारार्थ कितना प्रकार रूप धारण करते हो।

१३। तुम प्रलयसमुद्रमें मीनदेह परिग्रह करके विपुल वेदको धारण करते हो। विशाल एवं कठिनतर कूर्मशरीर धारण करके वार वार पृथिवीको वहन करते हो।

পারেন নাই। ১১। হে অনন্ত, কত কত বিশ্ব তোমার এক একটি রোমকূপ আশ্রয় করিয়া আছে। তুমি জন্মবিহীন ও নিত্য হইয়াও জগতের উপকারার্থে কতপ্রকার রূপ ধরিয়া থাক। ১২। তুমি প্রলয়সমুদ্রে মীনদেহ পরিগ্রহপূর্ব্বক বিপুল বেদকে ধারণ কর। বিশাল ও কঠিনতর কূর্ম্মশরীর ধারণ করিয়া বারবার

---

(१) युगे युगे मीनादिरूपैरवतारग्रहणात् वर्त्तमानप्रयोगाः कृताः ।

विहृत-विशद-रद- कोल-कलेवर
उद्धरसि प्रभवुर्व्वीम् (१)।
हिरण्यकशिपुं निहंसि विदध-
नृसिंह-तनु-मतिगुर्व्वीम् ॥ १४ ॥
दान-सुदर्पित- बलिदमनाय च
कलयसि वामन-कायम्।
भृगुसुतरूपी कृन्तसि बहुशः
क्षत्रियकुल-समुदायम् ॥ १५ ॥
त्रिलोक-रावण- रावण-निग्रह-
हेतुक-विग्रहधारी।

१४। हे प्रभो! तुम् शुभ्रदन्त वराहमूर्त्ति धारण करके पृथिवीको उद्धार करते हो। अति वृहत् नृसिंह-मूर्त्ति धारण करके हिरण्यकशिपुको वध करते हो।

१५। दानगर्व्वित बलिको दमन करनेकेवास्ते वामनरूप धारण करते हो। परशुरामरूपसे समस्त क्षत्रियकुलको बहुवार छेदन करते हो।

পৃথিবীকে বহন করিয়া থাক। ১৩। হে প্রভো, তুমি শুভ্রদন্ত বরাহমূর্ত্তি ধারণ করিয়া ধরাকে উদ্ধার কর। অতি বৃহৎ নৃসিংহমূর্ত্তি ধরিয়া হিরণ্যকশিপুকে বধ করিয়া থাক। ১৪। দান-গর্ব্বিত বলিকে দমন করিবার জন্য বামনদেহ ধারণ কর। পরশু-রামরূপে সমুদায় ক্ষত্রিয়কুলকে বহুবার ছেদন করিয়া থাক। ১৫।

---

(१) प्रभो उर्व्वीम् इति पदच्छेदः।

रघुकुलसिन्धो- जात इवेन्दु-
स्त्रिताप-नाशनकारी ॥ १६ ॥
कृतबहुपुण्या वयमतिधन्या-
स्तत इह भवदुपयानम्।
सफलं सकलं स्वनयन-मयनं (१)
जनुरनु (२) योगविधानम् ॥ १७ ॥
अहमतिदीनो भजनविहीनः
पूजनमपि न हि जाने।

१६। त्रिभुवन त्रासजनक रावणका निग्रहार्थ देह धारण करके रघुकुलरूप समुद्रसे चन्द्रकासा उत्पन्न होकर त्रिताप नाश करते हो।

१७। हमलोग धन्य, कितना पुण्य किये हैं, इस लिये आज तुम्हारा एहां आगमन हुआ है। हम्-लोगोंका चक्षु, आश्रम, जन्म और योगानुष्ठान समस्त सफल हुआ।

ত্রিভুবন-ত্রাসজনক রাবণের নিগ্রহার্থ দেহ ধারণ করিয়া, রঘুকুলরূপ সমুদ্র হইতে চন্দ্রের ন্যায় উৎপন্ন হইয়া ত্রিতাপ নাশ করিতেছ ।১৬। আমরা ধন্য, কত পুণ্যই করিয়াছি, তাই আজ এখানে তোমার আগমন হইয়াছে। আমাদের চক্ষু, আশ্রম, জন্ম ও

---

(१) अयनम् आश्रमः।

(२) अनु पश्चात्, अपिच इत्यर्थः।

त्वं हि दयामय मा भव विमुखो
मयि करुणामृतदाने ॥ १८ ॥
न किञ्चिदपरं प्रार्थयितव्यं
केवलमिद-मभिभाषे ।
स्वगुणगरिम्णा- प्रयाहि चरमे
श्यामाचरण-सकाशे ॥ १९ ॥

स इत्थं स्तुतस्ता-ननुज्ञाप्य रामो
निवासं चिकीर्षुर्जनाना मलच्चम् ।

१८। मैं अति दीन, भजन नही जानता हुं, पूजा भी नही जानता हुं। हे दयामय, तुम् मेरे प्रति करुणामृत दानमें विमुख मत हो।

१९। और कुछ नही चाहता हुं, केवल यह कहता हुं जो निज गुणका गौरव रचा करके अन्तकालमें श्यामाचरणके पास जाना।

२०। वे इसप्रकारसे स्तव करनेसे रामचन्द्रजी उन्

যোগানুষ্ঠান সকলই সফল হইল। ১৭। আমি অতি দীন, ভজন জানি না, পূজাও জানি না। হে দয়াময়, তুমি আমার প্রতি করুণামৃত-দানে বিমুখ হইও না। ১৮। আর অপর কিছু চাহি না, কেবল এই বলিতেছি যে, নিজ গুণের গৌরব রক্ষা করিয়া অন্তকালে শ্যামাচরণের নিকটে যাইও। ১৯।

अरण्यं विगाढ़ं विविक्षुः प्रयातः
समन्तादपश्यद् भुजङ्गप्रयातम् (१) ॥ २० ॥
वनं गते दाशरथौ महात्मनि
शनैर्वहन् कौसुमसौरभं सुखः।

लोगोंके निकटसे विदाय लेकर आत्मीय स्वजनको अलक्ष्ये वास करनेकी इच्छामें गहन वनमें प्रवेश करनेके लिये वहांसे गमन कियें, तब चारों दिकसे भुजङ्गप्रयात (अर्थात् सर्पगणोंका सञ्चार) देखने पायें।

२१। महात्मा रामचन्द्रजी वनमें प्रवेश करनेसे तब सुखकर समीरण कुसुम-सौरभ-सहकारसे मृदुमृदु

তাঁহারা এইরূপে স্তব করিলে, রামচন্দ্র তাঁহাদের নিকট বিদায় লইয়া, আত্মীয়-স্বজনের অলক্ষ্যে বাস করিবার ইচ্ছায়, গহন বনে প্রবেশ করিবার জন্য, যখন তথা হইতে গমন করেন, তখন চারিদিকে ভুজঙ্গপ্রয়াত * (অর্থাৎ সর্পগণের সঞ্চার) দেখিতে পাইলেন। ২০।

মহাত্মা রামচন্দ্র বনে প্রবেশ করিলে, তখন সুখকর সমীরণ

---

(१) अमङ्गलं भुजङ्गसञ्चारदर्शनं सीताहरणरूपस्य भाविनः अनिष्टस्य सूचकम्। भुजङ्गप्रयातमिति एतद्वृत्तनाम च, तथाच "भुजङ्गप्रयातं चतुर्भि-र्यकारैः।"

* ইহার শ্লোকটিও 'ভুজঙ্গপ্রয়াত' ছন্দে রচিত।

तदेव (१) वंशस्थविलं (२) प्रपूरयन्
जगौ यशस्तस्य कलं समीरणः ॥ २१ ॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां श्रीरामलीलायां
गीतिकाव्ये दण्डकारण्यप्रवेशो नाम
षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

वहकर, वशंस्थविल (अर्थात् वांशका छिद्र) पूर्ण कारके सुस्वरसे जैसा उनका यशगान करने लगी।

কুসুম-সৌরভ-সহকারে মৃদু মৃদু বহিয়া এবং বংশস্থবিল * (অর্থাৎ বংশের ছিদ্র) পূর্ণ করিয়া সুস্বরে যেন তাঁহার যশ গান করিতে লাগিল। ২১।

---

(१) तदा इव इति पदच्छेदः। जगौ इव इत्यन्वयः।

(२) कीचकवंशरन्ध्रम्। वंशस्थविलमिति एतद्वृत्तनाम च, तथाच "वदन्ति वंशस्थविलं ज-तौ ज-रौ।"

* ইহার শ্লোকটিও 'বংশস্থবিল' ছন্দে রচিত।

सप्तमः सर्गः ।

कृत्वा परिभ्रमण-माश्रममण्डलेषु
चक्रे निजाश्रमपदं स हि पञ्चवट्याम् ।
कृत्वा ततः श्रवणनास-मवद्यभावां
तत्रागता-मकृत शूर्पणखां विरूपाम् ॥ १ ॥

सम्पन्ने खरदूषणत्रिशिरसां रक्षःसहस्रैः समं
नाशे तेन रघूत्तमेन (१) कुपितो रक्षोऽधिपो रावणः ।

---

१ । वे नानाविध आश्रममें परिभ्रमण कर पञ्चवटीमें अपना आश्रम स्थापन किये । वहां शूर्पणखा आकर गर्हित भाव प्रकाश करनेसे कर्ण और नासिका छेदनकर उसको विकृताङ्गी किये थे ।

२ । वहही रघुवर सहस्र सहस्र राक्षसगणोंके सहित खर, दूषण और त्रिशिराका विनाश साधन करनेसे, राक्षसराज रावण कुपित होकर मारीचको विचित्र सुवर्ण-

তিনি নানাবিধ আশ্রমে পরিভ্রমণ করিয়া পঞ্চবটীতে নিজ আশ্রম স্থাপন করিলেন। পরে তথায় শূর্পণখা আসিয়া গর্হিত ভাব প্রকাশ করিলে, কর্ণ ও নাসিকা ছেদন করিয়া তাহাকে বিকৃতাঙ্গী করিয়াছিলেন। ১।

সেই রঘুবর দ্বারা সহস্র সহস্র রাক্ষসগণের সহিত খর, দূষণ ও ত্রিশিরার বিনাশ সংঘটিত হইলে, রাক্ষসরাজ রাবণ কুপিত হইয়া,

---

(१) करणे तृतीया ।

मारीचं गमयन् सुवर्णमृगतां चित्रां त्रिदण्डीभवन् (१)
वैदेहीं निजवंशपावकशिखां शून्ये-(२) ऽहरन्मोहतः ॥ २ ॥
दशमुखनीता-ऽवददतिभीता।
तनु-तनुभासा शशिवदना (३) सा ॥३॥

मृग कर, सन्यासीका वेशमें, निजवंशका अग्निशिखा स्वरूप (अर्थात् ध्वंसकारिणी) जानकीजीको निर्ज्जन पाकर मोहवश होकर हरण किया था।

३। रावण जब ले जाता था, तब वहही शशिवदना जानकीजीका देहकान्ति क्षीण हो गया। वे अत्यन्त भीता होकर कहने लगी।

মারীচকে বিচিত্র স্বর্ণমৃগ করিয়া, সন্ন্যাসীর বেশে, নিজবংশের অগ্নিশিখাস্বরূপ (অর্থাৎ ধ্বংসকারিণী) সীতাকে নির্জ্জনে পাইয়া মোহবশতঃ হরণ করিয়াছিল। ২।

রাবণ যখন লইয়া যায়, তখন সেই শশিবদনা * সীতার দেহ-কান্তি ক্ষীণ হইয়া গেল। তিনি অত্যন্ত ভীতা হইয়া বলিতে লাগিলেন। ৩।

---

(१) छत्र-दण्ड-कमण्डलुरूप-त्रिविधचिह्नधारी सन्यासी भूला।

(२) निर्जने।

(३) शशिवदनेति एतद्वृत्तनाम च, तदुक्तं "शशिवदना न्यौ।" तन्वि-त्यादिविशेषणद्वयेन एतदपि ध्वनितं यत् रावणस्पर्शात् तस्या देहकान्ति-र्मलिना जाता, तद्विनाशने तु मनसा निश्चिते मुखं प्रफुल्लमासीत्।

* ইহার শ্লোকটিও 'শশিবদনা' ছন্দে বিরচিত।

गीतम् ।

(मालवगौररागेण एकतालीतालेन च गेयम्)

क्व नु हे नाथ गमयसि कालम् ।
हरति निशाचर-पतिरिह मामय-
मेहि, सशरधनुषालम् ॥ (ध्रु०) ॥ ४ ॥
अतिशय भीति-समाकुलिता
गुरु-वेपथुमत्तनुकाया ।
अविरल-वाष्पजलाविलदृङ्
न दिशं कलयाम्यसहाया ॥ ५ ॥

---

४ । हे नाथ ! तुम अभी कहां काल यापन करते हो ? एहां यह राक्षसराज हमको हरण करता है, तुम (इसको मारनेमें) समर्थ, (अतएव) धनुर्व्वाणसह आओ ।

५ । मैं अत्यन्त भयाकुल हुआ हुं, मेरा यह क्षीण-देहमें गुरुतर कम्प होता है, अविरल वाष्पजलमें चक्षु कलुषित होता है । कोई दिक देखने नही पाताहुं, एहां मेरा कोइ सहाय नही है ।

হে নাথ ! তুমি কোথায় এখন কাল যাপন করিতেছ ? এখানে এই রাক্ষসরাজ আমাকে হরণ করিতেছে, তুমি (তাহার নিধনে) সমর্থ, (অতএব) ধনুর্ব্বাণ সহ আইস । ৪ । আমি অতিশয় ভয়াকুল হইয়াছি, আমার এই ক্ষীণদেহে গুরুতর কম্প হইতেছে । অবিরল বাষ্পজলে চক্ষু কলুষিত হইয়াছে, কোনও দিক্ দেখিতে

सुभग सदाशय देवर हे तव नावहितं हितसुक्तम् ।
अविनयजं फलमाशु हि मे तदिहापतितं ननु युक्तम् ॥६
कृतमपि दोष-मपास्य मया त्यज रोष-मये! मयि नित्यम् ।
मनसि निजां जननीमिव मां कुरुषे सततं यदि सत्यम् ॥७॥
अयि सकला वनदेवतिकाः प्रणमामि हि वो नतशीर्षा ।
कथयत राघवमेतदरं क्रियताञ्च ममोपचिकीर्षा ॥८

६। हे सौम्यमूर्त्ति सच्चरित्र देवर! तुम्हारा हित-वाक्य मैं नही सुना, अभी वहही अशिष्टाचारका उपयुक्त फल शीघ्रही हमारी उपस्थित हुआ।

७। हे वत्स! सत्यही अगर तुम सर्वदा हमको निज जननीके स्वरूप —— करते हो, तब हमारी कृत दोष मार्ज्जना कर, मेरी प्रति नियत रोष परित्याग करो।

८। हे समस्त वनदेवतागण! मैं नत मस्तकसे तुमलोगोंको प्रणाम करता हूं, वहही व्यापार शीघ्र रामचन्द्रजीको कहो, मेरी उपकार करनेमें इच्छुक हो।

পাইতেছি না; এখানে আমার কেহই সহায় নাই। ৫। হে সৌম্যমূর্ত্তে সচ্চরিত্র দেবর! তোমার হিতবাক্য আমি শুনি নাই, এখন সেই অশিষ্টাচারের উপযুক্ত ফল শীঘ্রই আমার উপস্থিত হইল। ৬। হে বৎস! সত্যই যদি তুমি সর্ব্বদা আমাকে নিজ জননীর ন্যায় মনে করিয়া থাক, তবে আমার কৃত দোষ মার্জ্জনা করিয়া, আমার প্রতি নিয়ত রোষ পরিত্যাগ কর। ৭। হে সমস্ত

निगदत हे तरुराजगणा व्रततीसहिता रघुवीरम्।
सकृदपि भावयतेह मया बहुवार-पदार्पित-नीरम ॥९॥
मृगकुल! माकुललोचनकै-(१) रवलोकय मा-मनुवारम्।
उपसर जीवितनाथ-मरे! वद मा-पहृतां(२)घनिकारम्॥१०
परिहित-भूषणरत्नचयं विकिरामि समन्तत एवम्।
विसृष्टय-मापद-मापतितां विनिवेदयतां रघुदेवम् ॥११॥

९। हे तरुवरगण! तुमलोग भी लतागण समभि-व्याहारमें रामचन्द्रजीको कहो। हम तुमलोगोंके पद-तलमें बहुवार जलसेचन किया हुं, अभी वहही एकवार मनमें करो।

१०। अरे मृगकुल! तुमलोग आकुलनयनसे वार वार मेरी तरफ ताको मत। प्राणनाथके पास जा, मुझको ऐसा अपमान-सहकारसे हरण करके ले जाता है कहो।

११। अङ्गस्थित समस्त अलङ्कारोंका इसतरहसे

বনদেবতাগণ! আমি নতমস্তকে তোমাদের সকলকে প্রণাম করিতেছি। এই ব্যাপারটি শীঘ্র রামচন্দ্রকে বল; আমার উপ-কার করিতে ইচ্ছুক হও। ৮। হে তরুবরগণ! তোমরাও লতা-গণের সমভিব্যাহারে রামচন্দ্রকে বল। আমি তোমাদের পদতলে বহুবার জল সেচন করিয়াছি, এখন সেইটি একবার মনে কর। ৯। অরে মৃগকুল! তোরা আকুল নয়নে বার বার আমার দিকে চাহিয়া থাকিস না। প্রাণনাথের নিকট যা; আমাকে এরূপ অপমান-

---

(१) मा आकुलेति पदच्छेदः। (२) मा माम्।

सकलसुखार्पण-कल्पलते   निचिते नलिनै-रयि पम्पे ।
वद सखि राघव-मेव-महं   दशवदनभयेन विकम्पे ॥१२॥
त्वमसि विभो पवनासि यतः खलु सर्वगतिः सकलात्मा ।
वद कृपया मम पत्युरहो   हरति ननु मैष(१) दुरात्मा ॥१३

इतस्ततः विक्षेप करता हुं, ये लोगभी यह उपस्थित विषम विपदका कथा रघुनाथजीको ज्ञापन करें ।

१२। अयि पम्पे ! तुम कमलोंसे परिव्याप्त और सकल सुख देने कल्पलता स्वरूप। सखि ! राघवको कहो, मैं दशाननके भयसे ऐसा कांपता हुं ।

१३। हे प्रभो पवनदेव ! तुम निश्चयही सर्व्वान्तर्यामी और सर्व्वत्रगामी। कृपा करके हमारे पतिसे कहो, यह दुरात्मा हमको हरण करता है ।

সহকারে হরণ করিয়াছে বল্‌গে। ১০। অঙ্গস্থিত সমস্ত অলঙ্কার-গুলি এইরূপে ইতস্ততঃ বিক্ষেপ করিতেছি। ইহারাও উপস্থিত এই বিষম বিপদের কথা রঘুনাথকে জানাউক।১১। অয়ি পম্পে! তুমি কমলে পরিব্যাপ্ত এবং সর্ব্ববিধ-সুখদানে কল্পলতাস্বরূপ। সখি, রাঘবকে বল, আমি দশাননের ভয়ে এইরূপ কাঁপিতেছি। ১২। হে প্রভো পবনদেব! তুমি নিশ্চয়ই সর্ব্বান্তর্যামী এবং সর্ব্বত্রগামী। কৃপা করিয়া আমার পতির নিকট বল, এই দুরাত্মা আমাকে

---

(१) मा एषः इति छेदः ।

क्व वत पितः ! क्व च मातरये ! क्व नु खलु भगिनीगण सर्वे ।(१
श्वशुरनिकर(२ क्व भवसि पुनः कमहो शरणं वत कुर्वे ॥१४
चरण(३) इदं तव देवि नत- स्वरणे वदति प्रतिवारम् ।
भवभयहारि-हरेर्दयिते त्यज तुच्छभयं सविचारम् ॥१५

---

१४ । हे पितः ! हे मातः ! हे भगिनीगण ! तुम लोग कहां ? कहां ? कहां ? हे श्वशुर और श्वश्रूगण ! तुमलोग कहां ? हाय ! मैं किसका शरण लुं ।

१५ । हे देवि ! श्यामाचरण तुम्हारा चरणमें प्रणाम कर वार वार यही कथा कहता है, तुम भवभयहारी हरिका प्रियतमा हो, यही विवेचनाकर यह तुच्छ भय परित्याग करो ।

হরণ করিতেছে। ১৩। হা পিতঃ! হে মাতঃ! হে ভগিনীগণ! তোমরা সকলে কোথায়? কোথায়? কোথায়? হে শ্বশুর ও শ্বশ্রূগণ! তোমরা কোথায়? হায়! আমি কার শরণ লই!। ১৪। —হে দেবি, শ্যামাচরণ তোমার চরণে প্রণাম করিয়া বার বার এই কথা বলিতেছে, তুমি ভবভয়হারী হরির প্রিয়তমা, এই বিবেচনা করিয়া, এ তুচ্ছ ভয় পরিত্যাগ কর। ১৫।

---

(१) वत पितः। अयि मातः। नु भगिनीगण। सर्व्वे यूयं क्व क्व क्व इत्यन्वयः।

(२) श्वशुरैत्यत्र एकशेषः।

(३) चरणः श्यामाचरणः।

आक्रन्दन्तीं रथविनिहितां शून्यमार्गेण यान्तीं
मन्दाक्रान्तां (१) रघुकुलवधू-मन्वमाद् गृध्रराजः।
पश्चाद्दृष्ट्वा दशमुखमसौ तर्जयामास वीरः
कृत्वा युद्धं न्यपत-दवनौ किञ्चिदायुर्जटायुः॥ १६॥
एवं जटायुषं हत्वा रावणो लोकरावणः।
तूर्णमेव ययौ लङ्का-मलङ्कारायितां भुवः॥ १७॥

१६। जानकीजी रथमें स्थापित होकर क्रन्दन करते करते शून्यमार्गमें जानेसें महावीर गृध्रराज जटायु, रघुकुलवधू मन्दाक्रान्ता (अर्थात् दुर्ज्जन कर्त्तृक आक्रान्ता) हुआ, ऐसा अनुमान किया। पश्चात् वह रावणको देखकर तर्ज्जन करने लगा और युद्ध करके अल्पमात्र आयु रहते भूतलमें गिर गया।

१७। त्रिभुवनका त्रासजनक रावण ऐसे जटायुको

সীতা রথে স্থাপিত হইয়া ক্রন্দন করিতে করিতে শূন্যমার্গে যাইতে থাকিলে, মহাবীর গৃধ্ররাজ জটায়ু, রঘুকুলবধূ মন্দাক্রান্তা * (অর্থাৎ দুর্জ্জন কর্তৃক আক্রান্তা) হইয়াছেন, এইরূপ অনুমান করিল। পরে সে রাবণকে দেখিয়া তর্জ্জন করিতে লাগিল, এবং যুদ্ধ করিয়া অল্পমাত্র আয়ু থাকিতে ভূতলে পতিত হইল। ১৬।

---

(१) मन्दाक्रान्तां दुष्टेनाभिभूताम्। मन्दाक्रान्तामिति एतद्वृत्तनाम च तथाचोक्तं "मन्दाक्रान्ताम्बुधिरस-नगैर्मो भ-नौ तौ गयुग्मम्।"

* ইহার শ্লোকটিও 'মন্দাক্রান্তা' ছন্দে রচিত।

ज्ञात्वाप्तचेटीपुटिता-मशोका-
टव्यामरक्षत् स तु तां सशोकाम् ।
वैरानुबन्धाद् रघुनन्दनेन
कालञ्च निन्ये मनसोऽसुखेन ॥ १८ ॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां रामलीलायां
गीतिकाव्ये सीताहरणं नाम
सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

विनाशकर पृथिवीका अलङ्कार स्वरूप लङ्कामें गमन किया ।

१८ । पश्चात् बहु शोकान्विता जानकीजीके विश्वस्त चेटीगणोंसे रक्षा करने लगा और रामचन्द्रजीको साथ शत्रुतानिबन्धन मनका असुखसे काल यापन करने लगा ।

ত্রিভুবনের ত্রাসজনক রাবণ এইরূপে জটায়ুকে বিনাশ করিয়া, শীঘ্রই পৃথিবীর অলঙ্কারস্বরূপ লঙ্কাপুরে গমন করিল। ১৭।

পরে সে শোকান্বিতা সীতাকে বিশ্বস্ত চেটীগণে পরিবৃত করিয়া অশোকবনে রাখিয়া রক্ষা করিতে লাগিল, এবং রামচন্দ্রের সহিত শত্রুতা-নিবন্ধন মনের অসুখে কাল যাপন করিতে রহিল। ১৮।

अष्टमः सर्गः ।

हत्वा मायामृगं रामः सानुजः पुनरागतः ।
अनालोक्याश्रमे सीता-मतिचिन्तान्वितोऽभवत् ॥१॥

इतस्ततोऽन्विष्य सलक्ष्मणस्तां
सुलक्षणां नाप यदा कथञ्चित् ।
तदातिशोकार्त्तमनाः सबाष्प-
मधीरमुच्चैर्विललाप रामः ॥ २ ॥

१। इधर रामचन्द्रजी मायामृग विनाशकर अनुजके साथ फिर आये, आश्रममें जानकीजीको देखने न पाकर अत्यन्त चिन्तान्वित हुआ।

२। रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको साथ इतस्ततः अन्वेषण करके भी जब किसी तरहसे जानकीजीको नहीं मिला, तब शोकातुर-चित्त और अधैर्य होकर सरोदनसे उच्चैस्वरमें विलाप करने लगे।

এদিকে রাম মায়ামৃগ বিনাশ করিয়া, অনুজের সহিত ফিরিয়া আসিয়া, আশ্রমে সীতাকে দেখিতে না পাইয়া অত্যন্ত চিন্তান্বিত হইলেন। ১।

রামচন্দ্র লক্ষ্মণের সহিত ইতস্ততঃ অন্বেষণ করিয়াও যখন কিছুতেই সীতাকে পাইলেন না, তখন শোকাতুরচিত্ত ও অধৈর্য্য হইয়া সরোদনে উচ্চস্বরে বিলাপ করিতে লাগিলেন। ২।

गीतम् ।

(देशवराड़ीरागेण अष्टतालतालेन च गेयम्)

प्रिये कुत्र याता, देहि मम दर्शनमिदानीम् ।
चिरमनवलोकने विकलमति मानसं
कथय मम मधुरतम-वाणीम् ॥ (ध्रु०) ॥३॥
त्वमसि मम जीवनं त्वमसि मम भावनं
त्वमसि सकलगृहसारम् ।
त्वमसि मम तोषणं त्वमसि मम भूषणं
त्वयि तु मम हृदय-मविकारम् ॥ ४ ॥
त्वमिव जलदावली सरस-मरुणाकृति-
श्चातक इवेह मम चित्तम् ।

---

३ । प्रिये ! कहां गये, अभी हमको दर्शन देओ ; बहुत घड़ी न देखकर मेरा मन अतिशय व्याकुल हुआ है, मेरा निकट सुमधुर बात कहो ।

४ । तुमही मेरा जीवन, तुमही मेरा प्रीतिदायिनी, तुमही मेरा भूषण, तुम्हारा प्रति मेरा हृदय निर्विकार ।

প্রিয়ে ! কোথায় গেলে, এখন আমাকে দর্শন দাও। অনেক-ক্ষণ না দেখায় আমার মন অতিশয় ব্যাকুল হইয়াছে ; আমার নিকট সুমধুর কথা কও। ৩। তুমিই আমার জীবন, তুমিই আমার চিন্তা, তুমিই আমার সমস্ত ভবনের সার। তুমি আমার প্রীতিদায়িনী, তুমি আমার ভূষণ, তোমার প্রতি আমার হৃদয়

বিতর বচনামৃতং   গুরুতৃষিতনাশনং
নাশয়তু দুঃখমুপস্থিতম্ ॥ ৫ ॥
তব বদনচন্দ্রিকা   দর-তিমির-নাশিনী
তোষয়তু লোচন-চকোরম্।
তব বিরহবেদনা   সকল-তনু-সাদিনী
পীড়য়তি মামিহ সুঘোরম্ ॥ ৬ ॥
কিমিদ-মিহ সঙ্গতং   ব্যসন-মবিতর্কিতং
কিঞ্চিদপি নাহ-ময়ি মন্যে।

৫। তুম সুস্নিগ্ধ ঔর মসৃণাকৃতি মেঘমালাকে ন্যায়, মেঁরা মন উসমেঁ চাতককে ন্যায়। তুম প্রবল তৃষ্ণানাশক বচনামৃত দানকর উপস্থিত দুঃখ দূর করো।

৬। ভয়রূপ অন্ধকারনাশিনী তুম্হারা বদনরূপ চন্দ্রিকা মেঁরা লোচনরূপ চকোরকো তুষ্ট করে। সর্ব-শরীরকা ক্লেশদায়িনী তুম্হারা বিরহজন্য যাতনা মুঝকো অভী অতি ভয়ঙ্কর কষ্ট দেতা হৈ।

৭। অয়ি প্রিয়ে! আজ ক্যা অভাবনীয় বিপদ

নির্ব্বিকার। ৪। তুমি সুস্নিগ্ধ ও মসৃণাকৃতি মেঘমালার ন্যায়, আমার মন তাহাতে চাতকের মত। প্রবল-তৃষ্ণানাশক বচনামৃত দান করিয়া উপস্থিত দুঃখ দূর কর। ৫। ভয়রূপ-অন্ধকার-নাশিনী তোমার বদনরূপ চন্দ্রিকা আমার লোচনরূপ চকোরকে তুষ্ট করুক। সর্ব্বশরীরের ক্লেশদায়িনী তোমার বিরহজন্য যাতনা আমাকে এখন ভয়ঙ্কর কষ্ট দিতেছে। ৬। অয়ি প্রিয়ে! আজ এ কি

व्याघ्र उत केशरी न्यगर-दतिसत्वरो-
ऽजगरवर उत कि-मथवान्ये ॥ ७ ॥
किमुत विपिनस्थलं तव सकल-मङ्गकम्
ललित-मुपकलितव-दभेदम् (१)।
तदिह नवमालिका प्रतनु-तनु-विभ्रमा
दिशति मम निरतिशय-खेदम् ॥ ८ ॥

उपस्थित हुआ, मैं कुछ नही समझ सक्ता हुं। व्याघ्र क्या सिंह क्या बृहत् अजगर अथवा और कोई जन्तु सत्वर आकर तुमको ग्रास किया है?

८। न यह वनभूमि एकत्र मिलकर तुम्हारा सुललित अङ्ग सब ग्रहण किये हैं? इसीसे नवमालिका तुम्हारा क्षीणदेहका विलास धारण कर मुझको अत्यन्त कष्ट देती है।

অভাবনীয় বিপদ্ উপস্থিত হইল, আমি কিছুই বুঝিতে পারিতেছি না। ব্যাঘ্র, কি সিংহ, কি বৃহৎ অজগর, অথবা অন্য কোন জন্তু সত্বর আসিয়া তোমাকে কি গ্রাস করিয়াছে?। ৭। না, এই বনভূমি একত্রে মিলিয়া তোমার সুললিত অঙ্গ-সমুদায় গ্রহণ করিয়াছে? তাইতে আজ নবমালিকা তোমার ক্ষীণ দেহের বিলাস ধারণ করিয়া আমাকে অত্যন্ত কষ্ট দিতেছে। ৮। হে সুদতি!

---

(१) अभेदम् अपृथक्, मिलिता इत्यर्थः।

तव सुदति निश्चितं स्फुरदधर-रागवद्
विम्बफल-मावहति तापम्।
तरल-मतिसुन्दरं नयनयुग-मीर्षया
हरिणकुल-महरत दुरापम्॥ ৯॥
तव वदनसुश्रियं वहति ननु सादरं
कमलकुल-ममल-मतिकान्तम्।
तव मधुरया गिरा कलित-कल-कोकिला
किरति मयि गरल-मिव वान्तम्॥ ১০॥

৯। हे सुदति! निश्चयही तुम्हारा आकम्पित अधर-जैसा रक्तवर्ण विम्बफल मेरा मनस्ताप जन्माता है। चञ्चल, अति सुन्दर और दुर्ल्लभ नयनद्वय ईर्षावशत: हरिणोंने हरण किया है।

১০। निर्म्मल और अति सुन्दर कमल समस्त यत्नपूर्ब्बक तुम्हारा वदन शोभा धारण कर रहा है। तुम्हारीही मधुर वाक्य लेकर कलकण्ठ कोकिलोंने जैसा गरल वमन कर मेरा अङ्गपर निक्षेप करता है।

নিশ্চয়ই, তোমার আকম্পিত অধরের ন্যায় রক্তবর্ণ বিম্বফল আমার সন্তাপ জন্মাইতেছে। চঞ্চল, অতি সুন্দর ও দুর্লভ নয়নদ্বয় ঈর্ষা-বশতঃ হরিণেরা হরণ করিয়াছে। ৯। নির্ম্মল ও অতি সুন্দর কমল সকল যত্নপূর্ব্বক তোমার বদন-শোভা ধারণ করিয়া রহিয়াছে। তোমারই মধুর বাক্য লইয়া কলকণ্ঠ হইয়া কোকিলারা যেন গরল বমন করিয়া আমার অঙ্গে বিক্ষেপ করিতেছে। ১০।

एव-मपरैश्च ते समसंवयवोत्करे
कलित इह (१) ललिततर आदौ।
श्यामचरणः परं तापतति-नाशिनौ
न्यधित हृदि कमलसम-पादौ॥ ११॥

श्रुत्वा दशाननहृता-मथ तां जटायोः
सुग्रीवसख्य-मधिगम्य सहाययुक्तः।
पर्य्याप्त-वानरचमूसहितः समुत्को
युद्धप्रयाण-मकरो-दचिरात् स धन्वी॥ १२॥

११। ऐसे अत्रस्थ दुसरा लोगोंने तुम्हारा सुललित अङ्ग समस्त पहिले ग्रहण करनेसे पश्चात् श्यामाचरण सर्व्वसन्तापहारी तुम्हारा कमलकासा पदद्वय हृदयमें छिपा रक्खा है।

१२। अनन्तर जानकीजीको रावण हरण किया है यह जटायुके मुखसे सुनकर सुग्रीवके साथ मित्रता कर सहायसम्पन्न होकर वहही धनुर्द्धर रामचन्द्रजी समुत्सुक होकर प्रचुर वानर सैन्य साथ लेकर शीघ्रही युद्धयात्रा किये।

এইরূপে অত্রস্থ অপর সকলেও তোমার সুললিত অঙ্গ সকল অগ্রে গ্রহণ করিলে, পরে শ্যামাচরণ সর্ব্বসন্তাপহারী কমলসদৃশ তোমার পা দুখানি লইয়া হৃদয়ে লুকাইয়া রাখিয়াছে। ১১।

---

(१) कलिते इह, ललिततरे आदौ इति छेदः।

দূতত্ব-মালম্ব্য ততো হনূমান্
সমুদ্র-মুল্লঙ্ঘ্য দদাহ লঙ্কাম্।
আশ্বাস্য সীতাং পুনরাগতঃ সন্
ননাম রামং বিকসন্মুখাব্জম্ ॥১৩॥
জলনিধিমধ্যে বিরচিতসেতু-
রমলচরিত্রো মনুকুলকেতুঃ।

১৩। উসকে পশ্চাৎ হনূমানজী দৌত্য স্বীকার কর, সমুদ্র পার হোকর লঙ্কা দগ্ধ কিয়ে ঔর জানকীজীকো আশ্বাস দেকর ফির আকর রামচন্দ্রজীকো প্রণাম কিয়ে তব উনকা মুখকমল প্রফুল্ল হো উঠা।

১৪। জো সমুদ্রকে ভিতর সেতু নির্ম্মাণ কিয়ে থে, বহহী নির্ম্মল চরিত্র মনুকুলশ্রেষ্ঠ ঔর নিখিল জগতকা

অনন্তর, সীতাকে রাবণ হরণ করিয়াছে ইহা জটায়ুর মুখে শুনিয়া, সুগ্রীবের সহিত মিত্রতা করিয়া সহায় সম্পন্ন হইয়া, সেই ধনুর্দ্ধারী রামচন্দ্র সমুৎসুক হইয়া প্রচুর বানর সৈন্য সমভিব্যাহারে অচিরে যুদ্ধযাত্রা করিলেন। ১২।

তারপর হনুমান দৌত্য স্বীকার করিয়া, সমুদ্র পার হইয়া, লঙ্কা দগ্ধ করিলেন। এবং সীতাকে আশ্বাস দিয়া, ফিরিয়া আসিয়া, রামচন্দ্রকে প্রণাম করিলেন। তখন তাঁহার মুখকমল প্রফুল্ল হইয়া উঠিল। ১৩।

যিনি সমুদ্রমধ্যে সেতু নির্ম্মাণ করিয়াছিলেন, সেই নির্ম্মল-

स निखिल-सृष्टिस्थितिहृतिहेतुः
स्वगुणमहिम्ना मम मन एतु ॥ १४ ॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां श्रीरामलीलायां
गीतिकाव्ये विलापो नाम
अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

सृष्टि स्थिति संहारके कारण रामचन्द्रजी अपने गुणसे मेरे मनके भितर आवें।

চরিত্র, মনুকুলশ্রেষ্ঠ এবং নিখিল জগতের সৃষ্টি স্থিতি সংহারের কারণ রামচন্দ্র নিজগুণে আমার মনোমধ্যে আসুন। ১৪।

नवमः सर्गः ।

—০০:০:০০—

हत्वा रावणमाहवे सतनयं सभ्रातृकं सान्वयं
राज्ये तस्य विभीषणं स्वशरणं संस्थाप्य धर्मप्रियम् ।
जानक्या मिलितश्चिराय विरहक्षामाङ्गयष्ट्या पुन-
रानन्दोद्गत-वाष्परुद्धवचन-स्तस्थौ कियन्तं क्षणम् ॥१॥

१। युद्धमें पुत्रोंके साथ और भ्राता कुम्भकर्णके साथ रावणको सवंशसे (अथवा अनुचरगणोंके साथ) विनाशकर और उसके राज्यमें अपना शरणागत धार्म्मिक विभीषणको स्थापित कर चिरविरहमें कृशाङ्गी जानकीजीके साथ पुनर्व्वार मिलित हुये। आनन्दसे वाष्पोद्गम होनेसे कुछ घड़ी वाक्यहीन हुये।

যুদ্ধে পুত্রদিগের সহিত এবং ভ্রাতা কুম্ভকর্ণের সহিত রাবণকে সবংশে (অথবা অনুচরগণের সহিত) বিনাশ করিয়া, এবং তাহার রাজ্যে নিজের শরণাগত ধার্ম্মিক বিভীষণকে স্থাপিত করিয়া, চিরবিরহে কৃশাঙ্গী জানকীর সহিত পুনর্ব্বার মিলিত হইলেন। তখন আনন্দ জন্য বাষ্পোদ্গম হওয়ায় কিছুক্ষণ বাক্যহীন হইয়া রহিলেন। ১।

प्रबलरिपुवधेनोद्भूत-हर्षप्रकर्षा-
स्त्रिदिवकुसुमभारं सादरं विक्षिपन्तः ।
मिलित-सुरसमूहा वेष्टमानाः समन्ताद्
रघुवर-मनुवारं तुष्टुवुर्भक्तिनम्राः ॥२॥

गीतम् ।

(गुर्ज्जरीरागेण निःसारुतालेन च गेयम्)

अहिशयने सुखशायक भवनायक हे ।
प्रलय-जलधि-कृतवास जय जय नाथ हरे ॥ ध्रु०॥३॥

---

२ । सुरगण प्रबल रिपुके बध होनेसे अत्यन्त हर्षित होकर सादरसे स्वर्गीय कुसुमराशि वर्षण करने लगे । और सबजनों मिलकर चारोदिक् से वेष्टनपूर्व्वक भक्ति-नम्र होकर वारंवार रघुवरका स्तव करने लगी ।

३ । तुम अनन्त शय्यामें सुखसे शयन करते हो, तुम संसारके नायक, तुम प्रलयसमुद्रमें वास करते हो ; हे नाथ ! हे हरि ! तुम्हारा जय होवे ।

সুরগণ প্রবল রিপুর বধে অত্যন্ত হর্ষিত হইয়া সাদরে স্বর্গীয় কুসুমরাশি বর্ষণ করিতে লাগিলেন। এবং সকলে মিলিয়া চারি-দিকে বেষ্টনপূর্ব্বক ভক্তিনম্র হইয়া বারংবার রঘুবরের স্তব করিতে লাগিলেন। ২।

তুমি অনন্তশয্যায় সুখে শয়ন কর, তুমি সংসারের নায়ক, তুমি প্রলয়সমুদ্রে বাস কর; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৩। লক্ষ্মী তোমার পাদপদ্ম সেবা করেন, তোমার উদরে

जलधिसुतापरिषेवित- चरणाम्बुज हे।
जठरनिहितजगदण्ड (१) जय जय नाथ हरे ॥४॥
शिव-चतुरानन-संस्तुत विबुधार्च्चित हे।
क्षयित-सकलरिपुसङ्घ जय जय नाथ हरे ॥५॥
मुरहर केशि-जनार्द्दन मधुमर्द्दन हे।
दलित-दनुज-दल देव जय जय नाथ हरे ॥६॥

४। लक्ष्मीजी तुम्हारा पादपद्म सेवा करतीं हैं, तुम्हारा हृदयमें समस्त ब्रह्माण्ड निहित रहता है; हे नाथ! हे हरि! तुम्हारा जय होवे।

५। तुम शिव और ब्रह्माका स्तुत, तुम देवगणोंसे अर्च्चित, तुम शत्रु समस्तोंका विनाशकारी, हे नाथ! हे हरि! तुम्हारा जय होवे।

६। तुम मुर दैत्यका विनाशक, तुम केशी और जन दैत्यका हन्ता, तुम मधुसूदन, तुम सकल दैत्यका विनाश किये हो; हे देव! हे नाथ! हे हरि! तुम्हारा जय होवे।

সমস্ত ব্রহ্মাণ্ড নিহিত থাকে; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৪। তুমি শিব ও ব্রহ্মার স্তুত, তুমি দেবগণের অর্চ্চিত, তুমি শত্রু সকলের বিনাশকারী; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৫। তুমি মুর দৈত্যের বিনাশক, তুমি কেশী ও জন দৈত্যের হন্তা, তুমি মধুস্থদন, তুমি সকল দৈত্যের বিনাশ করিয়াছ; হে দেব! হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৬। তোমার

(१) जगदण्डम् अण्डाकारं जगदित्यर्थः।

रुचिर-पयोधर-सोदर- वरविग्रह हे।
तड़िदुपमित-परिधेय जय जय नाथ हरे ॥७॥
मृगमद-कौस्तुभ-भूषित विपुलोरसि हे।
उचित-रुचित-वनमाल जय जय नाथ हरे ॥८॥
पदतल-भास्कर-गञ्जन भयभञ्जन हे।
नखरुचि-शोचित-सोम जय जय नाथ हरे ॥९॥

७। तुम्हारा उत्कृष्ट देह सुन्दर पयोधरका समान वर्ण, परिधान वस्त्र विद्युतका सदृश ; हे नाथ ! हे हरि ! तुम्हारा जय होवे।

८। तुम्हारा विशाल वक्षःस्थलपर मृगमद और कौस्तुभमणि शोभा पा रहा है, तुम सुन्दर वनमाला धारण करते हो ; हे नाथ ! हे हरि ! तुम्हारा जय होवे।

९। तुम्हारा पदतलकी प्रभासे सूर्य्य लज्जा पाते हैं, नखका आभासे चन्द्र दुःखित होते हैं, तुम भय निवारण करो ; हे नाथ ! हे हरि ! तुम्हारा जय होवे।

উৎকৃষ্ট দেহ সুন্দর পয়োধরের সমানবর্ণ, পরিধান-বস্ত্র বিদ্যুতের সদৃশ ; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৭। তোমার বিশাল বক্ষঃস্থলে মৃগমদ ও কৌস্তুভ শোভা পাইতেছে, তুমি সুন্দর বনমালা ধারণ করিয়া থাক ; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৮। তোমার পদতলের প্রভায় সূর্য্য লজ্জা পান, নখের আভায় চন্দ্র দুঃখিত হন, তুমি ভয় নিবারণ কর ; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ৯। তুমি বিবিধ অস্ত্র সকল ও

ধৃত-বিবিধায়ুধ-মণ্ডল বরকুণ্ডল হৈ।
কনক-মুকুট-শুভ-শীর্ষ জয় জয় নাথ হরি ॥১০॥
সুরনিবহাহিত শাসন গরুড়াসন হৈ।
মুনিগণ-মানস-হংস জয় জয় নাথ হরি ॥১১॥
গিরিশ-শরাসন-খণ্ডন কুলমণ্ডন হৈ।
প্রণতশরণ রঘুনাথ জয় জয় নাথ হরি ॥১২॥

১০। তুম বিবিধ অস্ত্রসমূহ ঔর উৎকৃষ্ট কুণ্ডল ধারণ করতে হো, কনক মুকুটসে তুম্হারা মস্তক শোভিত রহা হৈ; হে নাথ! হে হরি! তুম্হারা জয় হোবে।

১১। তুম দেবগণোঁকে অহিতকারীওঁকো শাসন কিয়ে হো, তুম গরুড়াসন, তুম মুনিগণোঁকে মানসসরোবরকে হংসস্বরূপ; হে নাথ! হে হরি! তুম্হারা জয় হোবে।

১২। তুম হরধনু ভঙ্গ কিয়ে হো, তুম অপনে কুলকা ভূষণস্বরূপ, তুম প্রণত ব্যক্তিওঁকা রক্ষাকর্ত্তা; হে রঘুপতি! হে নাথ! হে হরি! তুম্হারা জয় হোবে।

উৎকৃষ্ট কুণ্ডল ধারণ করিতেছ, কনক মুকুটে তোমার মস্তক শোভিত রহিয়াছে; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক।১০। তুমি দেবগণের অহিতকারীদিগের শাসন করিয়াছ, তুমি গরুড়াসন, তুমি মুনিগণের মানসসরোবরে হংসরূপ; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক।১১। তুমি হরধনু ভঙ্গ করিয়াছ, তুমি নিজ-কুলের ভূষণস্বরূপ, তুমি প্রণত ব্যক্তিদিগের রক্ষাকর্ত্তা; হে রঘু-পতে! হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক।১২। তুমি

जनकसुता-नयनाञ्जन जनरञ्जन हे।
विमल-निखिल-गुणधाम जय जय नाथ हरे ॥१३॥
निर्जित-दुर्ज्जय-रावण भवभावन हे।
शमित-सकलविध-ताप जय जय नाथ हरे ॥१४॥
तव पदयोः पतिता वय- मनुपालय हे।
सकल-विपद-मपकर्ष जय जय नाथ हरे ॥१५॥

१३। तुम जानकीजीके नयनका अञ्जनस्वरूप, तुम जनरञ्जन, तुम निर्म्मल निखिल गुणका आधार; हे नाथ! हे हरि! तुम्हारा जय होवे।

१४। तुम दुर्ज्जय रावणको पराजय किये हो, तुम जगत्का भावना भाव रहे हो, तुम समस्त सन्ताप दूर करते हो; हे नाथ! हे हरि! तुम्हारा जय होवे।

१५। हम लोग तुम्हारा चरणोंपर पतित होता हुं, हमलोगोंको रच्छा करो; हे नाथ! हे हरि! तुम्हारा जय होवे।

জানকীর নয়নের অঞ্জনস্বরূপ, তুমি জনরঞ্জন, তুমি নির্ম্মল নিখিল গুণের আধার; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ১৩। তুমি দুর্জ্জয় রাবণকে পরাজয় করিয়াছ, তুমি জগতের ভাবনা ভাবিয়া থাক, তুমি সকল সন্তাপ দূর কর; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ১৪। আমরা তোমার চরণে পতিত হইলাম, আমা-দিগকে রক্ষা কর এবং সকল বিপদ্ দূর কর; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ১৫। তুমি নরক-ভয় নিবারণ কর, তুমি

নরক-নিবারণ-কারণ   ভবতারণ হে।
চরণ-মরণভয়-নাশ   জয় জয় নাথ হরে ॥১৬॥

দুষ্টাবাসে নিবাসাদ্বহুদিন-মথ সা জানকী সন্দিহানং
চারিত্রে সচ্চরিত্রা সুবিমলচরিতং রাঘবেন্দ্রং বিদিত্বা।

১৬। তুম নরক-ভয় নিবারণ করতে হো, তুম শ্যামাচরণকা মরণভয়হারী; হে নাথ! হে হরি! তুম্হারা জয় হোবে।

১৭। অনন্তর বহুহী সচ্চরিত্রা জানকীজী, দুষ্ট রাবণকে গৃহমেঁ বাস করনেসে নির্ম্মলস্বভাব রামচন্দ্রজী উনকে চরিত্রপর সন্দিহান হুয়ে সমঝকর, আত্ম-শুদ্ধিকেবাস্তে দেবগণোঁকে সামনে অগ্নিমেঁ প্রবেশ কিয়ে। ঔর উজ্জ্বলাঙ্গী হোকর, নির্ম্মল-বর্ণ (অথবা অগ্নি-সংযোগসে পরিষ্কৃত) বসন পরিধান কর ঔর স্রগ্ধরা

ভবতারণ, তুমি শ্যামাচরণের মরণভয়হারী; হে নাথ! হে হরে! তোমার জয় হউক। ১৬।

অনন্তর সেই সচ্চরিত্রা জানকী, দুষ্টরাবণ-গৃহে বহুকাল বাস করায়, নির্ম্মলস্বভাব রামচন্দ্র তাঁহার চরিত্রে সন্দিহান হইয়াছেন বুঝিয়া, আত্মশুদ্ধির জন্য দেবগণের সমক্ষে প্রজ্বলিত অনলে প্রবেশ করিলেন। এবং উজ্জ্বলাঙ্গী হইয়া, নির্ম্মলবর্ণ (অথবা অগ্নি-

प्रत्यक्षं देवतानां ज्वलितहुतभुजं प्राविशत् स्त्रीयशुद्ध्यै
निष्क्रान्ता चोज्ज्वलाङ्गी शुचिरुचिवसना स्रग्धरा(१)दिव्य-
भूषा ॥१७॥

दृष्ट्वा सविस्मयं सर्वे देवा वह्निपुरोगमाः ।
साधु साध्विति शंसन्त-स्तां रामाय ददुः स्वयम् ॥१८॥

अप्राप्तापर-वनिताङ्ग-सङ्ग-मङ्कं
पत्युस्तं पतिनिरताधिगम्य सीता ।

(अर्थात् मालाधारिणी) और दिव्याभरणसे विभूषित होकर निर्गत हुयीं ।

१८। अग्नि प्रभृति समस्त देवगण सविस्मयसे देखकर, साधु साधु कहकर प्रशंसा करत स्वयं उनको रामचन्द्रजीके हातमें समर्पण किये ।

१९। जिसमें परस्त्रीका अङ्गस्पर्श नही हुआ, वहही पतिका अङ्क पाकर पतिव्रता जानकीजी रामचन्द्रजीका

সংযোগে পরিষ্কৃত) বসন পরিধান করিয়া এবং স্রগ্ধরা * (অর্থাৎ মালাধারিণী) ও দিব্যাভরণে ভূষিতা হইয়া নির্গত হইলেন। ১৭।

অগ্নি প্রভৃতি সমস্ত দেবগণ সবিস্ময়ে দেখিয়া, সাধু সাধু বলিয়া প্রশংসা করত, স্বয়ং তাঁহাকে রামের হস্তে অর্পণ করিলেন। ১৮।

যাহাতে পরস্ত্রীর অঙ্গ-সংস্পর্শ হয় নাই, সেই পতির অঙ্ক পাইয়া

---

(१) स्रग्धरेति एतद्वृत्तनाम च, तथाचोक्तं "म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रि-मुनि-यतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम् ।"

* ইহার শ্লোকটিও 'স্রগ্ধরা' ছন্দে রচিত।

आश्लिष्टा पुलकभराञ्चितं शरीरं
बिभ्राणाऽभवदधिकं प्रहर्षिणी (१) सा ॥१९॥

इति श्रीश्यामाचरणकविरत्नकृतायां श्रीरामलीलायां
गीतिकाव्ये रावणवधो नाम
नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

आलिङ्गनसे रोमाञ्चित तनु धारणकर प्रहर्षिणी (अत्यन्त हर्षिता) हुयीं।

পতিব্রতা সীতা, রামের আলিঙ্গনে রোমাঞ্চিত তনু ধারণ করিয়া প্রহর্ষিণী † (অর্থাৎ অত্যন্ত হর্ষিতা) হইলেন। ১৯।

---

(१) प्रहर्षिणीति एतद्वृत्तनाम च, तथाच "त्र्याशाभिर्म-न-ज-र-गाः प्रहर्षिणी सा"।

† ইহার শ্লোকটিও 'প্রহর্ষিণী' ছন্দে রচিত।

दशमः सर्गः ।

ततः पञ्चदशे वर्षे तमयोध्या-मुपागतम् ।
अभ्यनन्दन् प्रजाः सर्वा अभ्यषिञ्चंश्च सादरम् ॥१॥

रामाभिषेकं कृतभूरियात्रं
वराङ्गनाभिधृत-वारिपात्रम् ।
ऋषिव्रजोच्चारित-वेदमन्त्रं
वैतालिकाश्चोपजगुः सयन्त्रम् ॥२॥

१। उसके पश्चात् पञ्चदशवर्षपर वे अयोध्यामें आये, समस्त प्रजाओंने उनको अभिनन्दन कर सादरसे राज्यमें अभिषिक्त किये थे।

२। रामाभिषेकमें बहुल उत्सव हुये थे, वराङ्गनाओंने जलकुम्भ धारण कियीं थीं, ऋषिगण वेदमन्त्र उच्चारण किये थे, और वैतालिकोंने वाद्यसहकारसे गान करने लगे।

তার পর পঞ্চদশ বর্ষে তিনি অযোধ্যায় আসিলে সমস্ত প্রজারা তাঁহাকে অভিনন্দন করিল এবং সাদরে রাজ্যে অভিষিক্ত করিয়াছিল। ১।

রামাভিষেকে বহুল উৎসব করা হইয়াছিল, বরাঙ্গনারা জলকুম্ভ ধারণ করিয়াছিল, ঋষিগণ বেদমন্ত্র উচ্চারণ করিয়াছিলেন, এবং বৈতালিকেরা বাদ্যসহকারে গান করিতে লাগিল। ২।

গীতম্।

(বিভাসরাগেণ একতালীতালেন চ গেয়ম্)

নৃপসুষমা- মালোকয় জনগণ
সফলয় লোচনম্ ॥ (ধ্রু০) ॥৩॥
বরমণিশোভিত- কনকময়াসন-
মধিগত ইহ বরবর্ণঃ।
পরমসমুজ্জ্বল- রত্নবিনির্মিত-
কুণ্ডল-মণ্ডিত-কর্ণঃ ॥৪॥
তূণশরাসন- বাণবিভূষিত-
বরবপু-রুজ্জ্বলভাসঃ।

৩। হে জনগণ! রাজশোভা দর্শন কর নয়ন সফল করো।

৪। পরমসুন্দর রাজা অভী উৎকৃষ্ট মণিভূষিত কনকসিংহাসনপর বৈঠে হৈঁ। অত্যন্ত উজ্জ্বল রত্ননির্ম্মিত কুণ্ডলসে কর্ণদ্বয় শোভিত হৈঁ।

৫। তূণ, ধনু ঔর বাণোঁসে দেহ ভূষিত হৈ, কান্তি

হে জনগণ! রাজশোভা দর্শন করিয়া নয়ন সফল কর। ৩। পরমসুন্দর রাজা এখন উৎকৃষ্ট মণিভূষিত স্বর্ণসিংহাসনে বসিয়াছেন। অত্যন্ত উজ্জ্বল রত্নকুণ্ডলে কর্ণদ্বয় শোভিত হইয়াছে। ৪। তূণ ও বাণে দেহ ভূষিত, কান্তি উজ্জ্বল, মুখকমল সুধাংশুকে নিন্দা করিতেছে, সুমধুর হাস্য তাহাতে লাগিয়া রহি-

সুধাংশু-গঞ্জন- বদন-সরোরুহ (১)
উচিত-মধুরতর-হাসঃ ॥৫॥
মুকুট-বিভাসিত- শিরসি বিরাজতি
বিচিত্র-সিতাতপত্রম্।
উভয়ত উত্তম- চামর-বিলসিত-
মুরসি চ মৌক্তিকসূত্রম্ ॥৬॥
বিচিত্র-ভূষিত- জনকসুতা বর-
তনুরপি রাজতি বামে।

উজ্জ্বল, মুখকমল সুধাংশুকো নিন্দা করতা হৈ, সুমধুর হাস্য উসমেং লগ রহা হৈ।

৬। মুকুটসে উদ্ভাসিত মস্তককে উপর বিচিত্র শ্বেত-ছত্র শোভা পাতা হৈ, দোনোং ওর উত্তম চামর আন্দোলিত হো রহা হৈ, ঔর বক্ষঃস্থলপর মুক্তাকা মালা রহা হৈ।

৭। বাংএ ওর বিচিত্র আভরণসে ভূষিত জানকী-

য়াছে। ৫। মুকুটে উদ্ভাসিত মস্তকের উপর বিচিত্র শ্বেতচ্ছত্র শোভা পাইতেছে। দুই দিকে উত্তম চামর আন্দোলিত হইতেছে, এবং বক্ষঃস্থলে মুক্তার মালা রহিয়াছে। ৬। বাম ভাগে বিচিত্র আভরণে ভূষিত জানকীর দেহ শোভা পাইতেছে। অনুপম সুন্দর

---

(১) বদনসরোরুহঃ ইতি, বদনসরোরুহে ইতি বা সন্ধিবিচ্ছেদঃ।

प्रणमति मारुति- रुपरचिताञ्जलि
पदि निरुपममभिरामे ॥७॥
अगुरु-सुचन्दन- मृगमद-सौरभ-
भरित-हरित इह सर्वाः।
ज्वलदनलार्पित- सुगन्ध-सम्भृत-
धूप सधूमित-गर्भाः ॥८॥
भ्रातृभिरभितः परितः प्रकृतिभि-
रमात्यगणैश्च युक्तम् (१)।

जीका देह शोभा पाता है। अनुपम सुन्दर पदतलपर हनूमानजी कृताञ्जलि होकर प्रणाम करते हैं।

८। समस्त दिक् अगुर और चन्दनके साथ मृगमदका सौरभसे पूर्ण हुआ है और उन सबोंके अभ्यन्तरसे प्रज्वलित अनलमें अर्पित सुगन्धपूर्ण धूपका धूम उत्थित होता है।

९। उभय दिकोंसे भ्रातृगण और चतुर्दिकोंसे प्रजागण और अमात्यगण मिलित हुये हैं। महर्षिगण

পদতলে হনূমান্ কৃতাঞ্জলি হইয়া প্রণাম করিতেছেন। ৭। সমস্ত দিক্ অগুরু, উত্তম চন্দন ও মৃগমদের সৌরভে পূর্ণ হইয়াছে এবং তাহাদের অভ্যন্তরে প্রজ্বলিত অনলে অর্পিত সুগন্ধপূর্ণ ধূপের ধূম উত্থিত হইতেছে। ৮। উভয়দিকে ভ্রাতৃগণ এবং চতুর্দ্দিকে

---

(१) मिलितम्।

वरासन-स्थित- महर्षिगण-कृत-
सुस्थितमुत्तम-सूक्तम् ॥९॥
कदलीतलधृत- पूर्णकनकघट-
फल-नवपल्लव-कान्तम् ।
निबद्ध-कुसुमा- वलिरुचिममलां
तोरणमयति नितान्तम् ॥१०॥
श्यामचरण इति सविनति निगदति
विप्लुत-हृदयभर-भावम् ।

उत्कृष्ट आसनपर उपविष्ट होकर उत्तमा सूक्त (अर्थात् मन्त्र) उच्चारण करते हैं ।

१० । कदलीतलमें पूर्ण सुवर्ण घट रक्खा हुआ है, उसपर फल और नवपल्लव देनेसे बहिर्द्वार शोभित हुआ है, और पुष्पमाला निबद्ध होनेसे नितान्त निर्म्मल प्रभा प्राप्त हो रहा है ।

११ । श्यामाचरण सविनयसे यहही कहता है कि

প্রজাগণ ও অমাত্যগণ মিলিত হইয়াছেন। মহর্ষিগণ উৎকৃষ্ট আসনে উপবিষ্ট হইয়া উত্তম সূক্ত (অর্থাৎ মন্ত্র) উচ্চারণ করিতেছেন। ৯। কদলীতলে জলপূর্ণ সুবর্ণ ঘট রাখা হইয়াছে, তাহাতে ফল ও নবপল্লব দেওয়ায় বহির্দ্বার শোভিত হইয়াছে, এবং পুষ্পমালা নিবদ্ধ হওয়ায় নিতান্ত নির্ম্মল প্রভা প্রাপ্ত হইতেছে। ১০। শ্যামাচরণ সবিনয়ে এই বলিতেছে, হে জনগণ! তোমরা এখানে

समसिह मिलिते कुरु पुरु-जनते
"रघुवर जय जय"-रावम् ॥११॥

कर्णान्ते वरमौक्तिकं (१)ह्युभयतः सच्चामरं शोभते
वामाङ्के जनकात्मजा-निलिरध-श्छत्रञ्च यस्योपरि।
जम्बूव-ज्जलविम्बव-ज्जलजव-ज्जम्बालव-ज्जालवत्
तस्मिन् रूपसरोवरे मम मनोमीन त्वया मज्जताम् ॥१२॥

हे जनगण! तुम लोग एहां एक साथ मिलित होकर हृदयपूर्ण भक्ति प्रकाश करके एक सङ्गमें उच्चैस्वरसे रघुवरका जय, रघुवरका जय यहही शब्द करो।

१२। जिनका कर्णमें उत्कृष्ट मुक्ता जम्बुफलकासा शोभा पा रहा है और दोनों पार्श्वमें उत्तम चामर जल-विम्बकासा शोभा पा रहा है, वाम अङ्गमें जानकीजी पद्मकासा शोभा पाती हैं, अधोदेशमें पवननन्दन हनूमानजी कर्दमकासा शोभा पाते हैं, और उपरि-भागमें छत्र जालकासा शोभा पाता है; रे मेरा मनो-मीन! तु वहही रूप-सरोवरमें मग्न हो।

একত্রে মিলিত হইয়া, হৃদয়ভরা ভক্তি প্রকাশ করিয়া, একসঙ্গে উচ্চস্বরে 'রঘুবরের জয়, রঘুবরের জয়' এই রব কর। ১১।

যাঁহার কর্ণে উৎকৃষ্ট মুক্তা জম্বুফলের ন্যায় শোভা পাইতেছে,

---

(१) जम्बूफलेन सह वरमौक्तिकस्य स्वौल्यांशे उपमा, न तु वर्णतः।

नानारत्न-विचित्रविग्रह-मिमं राजासनाधिष्ठितं
रामं पद्मपलाश-लोचनयुगं दूर्व्वादलश्यामलम् ।
सर्व्वे पश्यत पश्यत क्षणमहो सीतासहायं शुभं
श्रीश्यामाचरणस्य चित्तनिलयें यावन्न संलीयते ॥१३॥

रामशिखी मे कुर्वन्नृत्यं
हृदयगुहायां खेलति नित्यम् ।
मा स्पृश रें खल मामक मङ्ग-
मपसर शीघ्रं कालभुजङ्ग ॥१४॥

१३। पद्मपलाशलोचन दूर्व्वादल-श्याम सुन्दर रामचन्द्रजी नानारत्नसे भूषित-शरीर होकर जानकीजीके साथ राजासनपर अधिष्ठान करते हैं ; हे भाइ सब ! तुमलोग तब तक इनको देख लो, जब तक कि ये श्यामाचरणके हृदयमन्दिरमें प्रवेश न करें ।

দুই পার্শ্বে উত্তম চামর জলবিম্বের ন্যায় শোভা পাইতেছে, বাম অঙ্গে জানকী পদ্মের ন্যায় শোভা পাইতেছেন, অধোদেশে পবন-নন্দন হনূমান্ কর্দ্দমের ন্যায় শোভা পাইতেছেন, এবং উপরিভাগে ছত্র জালের ন্যায় শোভা পাইতেছে ; রে আমার মনো-মীন ! তুই সেই রূপ-সরোবরে মগ্ন হ । ১২ ।

পদ্মপলাশলোচন দূর্ব্বাদল-শ্যাম সুন্দর রামচন্দ্র নানারত্নে ভূষিত-শরীর হইয়া সীতার সহিত রাজাসনে অধিষ্ঠান করিতেছেন ; ওহে ! তোমরা সকলে ততক্ষণ ইঁহাকে দেখিয়া লও, যতক্ষণ না ইনি শ্যামাচরণের হৃদয়মন্দিরে প্রবেশ করেন । ১৩ ।